एक धर्मयुद्ध

[अहमदाबाद के मिल-मज़दूरों की लड़ाई का इतिहास]

लेखक

महादेव हरिभाई देसाई

अनुवादक

काशिनाथ त्रिवेदी

नवजीवन प्रकाशन मंदिर

अहमदाबाद

मुद्रक और प्रकाशक
जीवणजी डाह्याभाई देसाई
नवजीवन मुद्रणालय, कालुपुर, अहमदाबाद

पहली बार, २,०००

आठ आना

अक्तूबर, १९४१

प्रस्तावना

हिन्दी में इस छोटी-सी पुस्तक का यह संस्करण प्रकाशित हो रहा है, यह जान कर मुझे खुशी होती है। जब यह 'धर्मयुद्ध' हुआ था, तब शायद ही किसीको यह खयाल आया हो कि युद्ध का अंतिम परिणाम क्या होगा। टेकवाले मज़दूरों की टेक की सबने सराहना की और थोड़े ही समय में लोग इसे भूल गये। लेकिन आज इस युद्ध के इतिहास की माँग हर एक भाषा में हो रही है। उस समय तो लड़नेवालों के साथी इनेगिने ही थे, पर आज मज़दूरों के लिए लड़नेवाले बहुत खड़े हो गये हैं। फिर भी, यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं कि दर असल यह एक धर्मयुद्ध था। इस युद्ध के फलस्वरूप ही आज अहमदाबाद का मजूर-महाजन-संघ हिन्दुस्तान की एक अद्वितीय संस्था बन पाया है; यही नहीं, बल्कि आज सारी दुनिया में उसका अपना अद्वितीय स्थान है, क्योंकि सत्य और अहिंसा को सामने रखकर इस संघ ने जितना काम किया है, उतना शायद ही दूसरे किसी मज़दूर संघ ने किया होगा। उस समय मज़दूर अपनी मज़दूरी में कुछ टकों का इज़ाफ़ा कराने के लिए लड़े थे और उस लड़ाई में कामयाब हुए थे। लेकिन आज मज़दूरों के सामने एक ही ध्येय है: मिलों के स्वामित्व में तथाकथित मालिकों के साथ बराबरी का हिस्सा प्राप्त करना। जिस तरह पूँजी धन है, उसी तरह मेहनत भी धन है, और बेशक़ीमती धन है। मिलों पर इन दोनों धनपतियों का

संयुक्त स्वामित्व होना चाहिए। १९१८ का यह धर्मयुद्ध लड़कर मज़दूरों ने अपने धन के महत्त्व को समझा है। अभी संयुक्त स्वामित्व प्राप्त करने की शक्ति उन्हें मिली नहीं है, पर वे बड़े वेग से उसका संग्रह करते जा रहे हैं। जिस दिन यह शक्ति वे प्राप्त कर लेंगे, उस दिन संभव है कि मालिक उन्हें स्वामित्व-प्राप्ति के लिए हड़ताल करने को मज़बूर न करें, उलटे अपने आप भाई कहकर उन्हें अपना लें और उनको अपना भागीदार बना लें। अहिंसा के ऐसे अद्भुत फल निपजते हैं। लेकिन इस सबके लिए धैर्य की आवश्यकता है, संयम और अनुशासन की आवश्यकता है, संघशक्ति और संघनिष्ठा की आवश्यकता है। अहमदाबाद के मज़दूरों में ये सब गुण हैं। इन गुणों के बल पर वे अपना ध्येय प्राप्त करें, यही मेरी कामना है। यदि वे ऐसा कर सकेंगे तो कहा जायगा कि उन्होंने श्री० अनसूयाबहन, श्री० शंकरलालभाई, और श्री० गुलज़ारीलाल के मार्गदर्शन को सफल सिद्ध किया है, क्योंकि इन लोगों के दिल में तो मज़दूरों को उनके असली स्थान तक पहुँचा देने के सिवा और कोई मनोरथ न था, न है।

महादेव देसाई

विषयसूची

प्रस्तावना ३

मज़दूरों की लड़ाई का इतिहास और अवलोकन . १

महात्माजी की पत्रिकायें . . . ५६

परिशिष्ट

पंच संबंधी पत्र-व्यवहार और अपने उपवास के संबंध में गांधीजी का स्पष्टीकरण . . ९६

एक धर्मयुद्ध

(अहमदाबाद के मिल-मज़दूरों की लड़ाई का इतिहास)

१
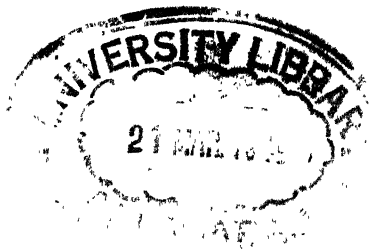
'ख़ुदा इज्ज़त बहुत देवे मेहरबान गांधी को,
दुआयें दे रहे हैं हिन्दू-मुसलमान गांधी को।
ग़रीबों के लिए उन्होंने यह सदमा उठाया;
गोया हमें भी ख्वाबे गफ़लत से जगाया।
हम तो समझे हैं कि तनहाई का साथी पाया,
फ़तह दे कुदरतेग़ैब से तू हमको ख़ुदा या।
मेहरबान गांधी और बहन अनसूया हमारी,
ता क़यामत नाम उनका रहे दुनिया में जारी।'

गांधीजी के सत्याग्रह आश्रम में ब्रह्मचारी सुबह-शाम जो प्रार्थना करते हैं, उसमें उनके जीवन-ध्येय को प्रकट करनेवाले मंत्रों और भजनों की बहुतायत है। गांधीजी चाहते हैं कि इन मंत्रों और भजनों का रहस्य ब्रह्मचारियों की आत्मा में घुलमिल जाय और आगे चलकर उनके प्रत्येक कार्य द्वारा वह उदात्त रूप में प्रकट होता रहे। हम देख रहे हैं कि आश्रम में नित्य रटे जानेवाले पद 'कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्' और आश्रम के प्रिय भजन 'वैष्णव जन तो तेने कहीए जे पीड पराई जाणे रे' का भाव ही गांधीजी की सभी प्रवृत्तियों का केन्द्र बना हुआ है।

ये दोनों भजन जितने सादे उतने ही गंभीर भी हैं। इनमें ममत्व या अभिमान का अंश नहीं। इनकी एकमात्र तीव्र आकांक्षा

यही है कि मनुष्य की समस्त प्रवृत्तियाँ एक इष्ट दिशा में प्रवर्तित होती रहें।

इसीलिए एक सच्चे सत्याग्रही ने इनको अपने आचारसूत्र के रूप में अपनाया है। वह ममत्व या अभिमान वश सत्याग्रह के क्षेत्र की खोज नहीं करता। उसे सत्याग्रह के विषय अपनेआप मिलते रहते हैं, और उन विषयों को अपने हाथ में लेने के सिवा सत्याग्रही के लिए दूसरा कोई चारा ही नहीं रहता। गांधीजी चंपारन को खोजने नहीं गये, बल्कि चंपारन ही उन्हें खींचकर ले गया। खेड़ा के किसानों की लड़ाई वे ख़ुद मोल लेने नहीं गये; वह उन्हें सौंपी गई। हाँ, यह ज़रूर है कि गांधीजी ने जिस किसी भी काम को हाथ में लिया, उसको तबतक नहीं छोड़ा, जबतक उसका कोई परिणाम प्रकट न हो गया।

अहमदाबाद के मिलमज़दूरों की लड़ाई में भी गांधीजी को दूसरों की इच्छा से ही शामिल होना पड़ा। खेड़ा के प्रश्न को लेकर गांधीजी को २ फरवरी के दिन बम्बई जाना पड़ा था। वहाँ सेठ अंबालाल साराभाई से उनकी भेट हुई। श्री० अंबालाल-भाई ने अपने पास के कुछ काग़ज़-पत्र दिखाकर गांधीजी से कहा कि अहमदाबाद के मिलमज़दूरों में 'बोनस' के बारे में असंतोष है; और डर है कि कहीं वे हड़ताल न कर दें। यदि ऐसा हुआ तो उसका नतीजा अच्छा न होगा। इसलिए उन्होंने गांधीजी को सलाह दी कि वे इस सवाल को अपने हाथ में लें। श्री० अंबालालभाई ने जो भय व्यक्त किया, वह गांधीजी को गंभीर मालूम हुआ। उन्होंने सोचा: 'यदि सचमुच स्थिति ऐसी ही है, तब तो सारे अहमदाबाद शहर की शान्ति खतरे में पड़

सकती है'। अतएव गांधीजी ने निश्चय किया कि वे भरसक इस संकट को टालने का यत्न करेंगे।

गांधीजी ने अहमदाबाद पहुँचकर मज़दूरों और मिलएजन्टों की स्थिति और दृष्टि को समझना शुरू किया। उन्होंने देखा कि पिछले अगस्त से बुनाई विभाग के मज़दूरों को मनचाहा 'प्लेग बोनस' मिल रहा था। इस बोनस के लोभ से बुनाई विभाग के बहुत से मज़दूर, जो साधारण दशा में प्लेग के कारण अहमदाबाद छोड़कर चले जाते, अपनी जान को खतरे में डालकर भी मिलों से चिपटे हुए थे। जांच करने से मालूम हुआ कि कई मामलों में तो यह 'प्लेग बोनस' मज़दूरों को उनकी मज़दूरी के अलावा क़रीब ७०–८० फ़ीसदी ज्यादा दिया जाता था। और चूँकि प्लेग बन्द होने पर भी अनाज, कपड़े और रोज़मर्रा के इस्तेमाल की अन्य चीज़ों के दाम पहले से दुगने, तिगुने और कहीं-कहीं चौगुने तक हो गये थे, यह 'बोनस' जारी रहा था।

इस बोनस को एकाएक बंद कर देने के मिलमालिकों के निश्चय से बुनाई विभाग के मज़दूरों में काफ़ी खलबली मची थी। श्री० अनसूयाबहन से मिलकर वे रोज़ अपना असंतोष उनके सामने प्रकट करने लगे थे। अब वे 'प्लेग बोनस' के बजाय महँगाई का कम से कम ५० फ़ीसदी भत्ता चाहते थे। गांधीजी ने अहमदाबाद पहुँचकर वहाँ के खास-खास मिलएजन्टों से बातचीत शुरू की। वे लोग भी इस प्रश्न को सुलझाने की उत्सुकता प्रकट करने लगे। गांधीजी ने अबतक इस झगड़े में सीधा भाग लेने का निश्चय नहीं किया था। इधर हालत दिन-ब-दिन नाज़ुक होती जा रही थी। सरकार के पास भी सारा मामला पहुँच चुका था, और ता० ११

को अहमदाबाद के तत्कालीन सहृदय कलेक्टर ने गांधीजी को नीचे लिखा एक खत भेजा था ।

'बोनस के प्रश्न को लेकर मिलमालिकों और मज़दूरों के दरम्यान एक बहुत ही गंभीर हालत पैदा हो जाने का अँदेशा है । मालिक लोग मिलें बंद करने की धमकी दे रहे हैं, इससे लोगों को बहुत तकलीफ़ और दुःख होने की आशंका है । अतएव मैं सारी परिस्थिति को उसके सच्चे स्वरूप में समझने को उत्सुक हूँ । मुझे पता चला है कि अगर मिलमालिक किसीकी सलाह पर ध्यान देंगे, तो वह आपकी ही सलाह होगी । आपको उनके प्रति क़ाफ़ी सहानुभूति भी है; और मुझसे कहा गया है कि आप उनकी बात मुझे भलीभाँति समझा भी सकते हैं । अतएव मैं आपका बहुत आभारी हूँगा, अगर आप कल किसी समय अवसर पाकर अपना एकाध घंटा मुझे देने की कृपा करेंगे।'

गांधीजी कलेक्टर, मिलएजन्ट और मज़दूर, सबसे मिले। सबके साथ उन्होंने सलाह-मशविरा किया । अंत में, दोनों पक्षों ने यह स्वीकार किया कि इस झगड़े का फ़ैसला पंचों द्वारा कराया जाय । पंचों में मालिकों की ओर से सेठ अंबालालभाई, सेठ जगाभाई दलपतभाई, और सेठ चंदुलाल एवं मज़दूरों की ओर से सर्वश्री गांधीजी, वल्लभभाई पटेल और शंकरलाल बैंकर तथा सरपंच के स्थान पर कलेक्टर साहब नियुक्त किये गये ।

इसके बाद तुरन्त ही गांधीजी को खेड़ा जाना पड़ा । वहाँ की हालत भी नाज़ुक थी । खेड़ा में उन्होंने जाँच का कार्य शुरू कर दिया था और वे उसीमें गड़-से गये थे । इतने में श्री. अनसूयाबहन ने खबर भेजी कि अहमदाबाद की हालत नाज़ुक है, और मिलमालिक मिलकर मिलों में 'लॉक आउट' का ऐलान करने की

तैयारी कर रहे हैं । इस पर गांधीजी अहमदाबाद आये । उन्हें पता चला कि किसी ग़लतफ़हमी के कारण कई मिलों के मज़दूरों ने हड़ताल कर दी है । पंचों की नियुक्ति के बाद मज़दूरों का यह कार्य गांधीजी को अनुचित मालूम हुआ । जो कुछ हो चुका था, उसके लिए उन्होंने मिलमालिकों के सामने अपना खेद प्रकट किया, और कहा कि मज़दूर अपनी ग़लती को दुरुस्त करने के लिए तैयार हैं । यहां यह कह देना ज़रूरी है कि इस मामले में मिलमालिक बिलकुल बेकसूर तो नहीं थे; फिर भी गांधीजी ने अपने पक्ष के कसूर को ही बड़ा माना और उसे सुधार लेने की तत्परता दिखाई । लेकिन बात मालिकों के गले न उतर सकी । वे इस हक़ीक़त पर ज़ोर देने लगे कि चूँकि पंच की नियुक्ति के बाद मज़दूरों ने हड़ताल कर दी है, इसलिए, पंच-फ़ैसले की बात अब खत्म हो जाती है । पंच के बंधन से वे अपने को मुक्त समझते हैं, और जो मज़दूर २० प्रतिशत भत्ता लेकर काम करने को तैयार नहीं हैं, उन्हें निकाल देने का निश्चय कर चुके हैं । इस संकट को टालने के लिए गांधीजी ने अथक परिश्रम किया; लेकिन मिलमालिक मज़दूरों की ग़लती पर ही ज़ोर देते रहे, और ख़ुद ज़रा भी टस से मस न हुए ।

इसके बाद से गांधीजी मज़दूरों में ख़ूब हिलने-मिलने लगे । वे श्री० अनसूयाबहन, और श्री० शंकरलाल बैंकर के सिवा उन लोगों से भी मिलने और सलाह-मशविरा करने लगे, जो मिल-मज़दूरों की हालत से वाकिफ़ थे और तनख्वाह वग़ैरा की जानकारी रखते थे । उन्होंने बड़ी बारीकी से नीचे लिखे सवालों की छानबीन शुरू की : अहमदाबाद के मज़दूरों को कितनी मज़दूरी मिलती है? बम्बई के मज़दूरों को क्या मिलता है? मज़दूरों की

माँग क्या है? मालिकों की हालत कैसी है? लड़ाई के पहले उन्हें कितना कमीशन मिलता था? लड़ाई के बाद अब कितना मिलता है? युद्ध के बाद कपड़ा तैयार कराने का जो खर्च बढ़ा है, उसे ध्यान में रखते हुए मिलमालिक आज मज़दूरों की माँग पूरी कर सकते हैं या नहीं? इत्यादि। इस छानबीन के बाद उन्होंने इन प्रश्नों पर अपनी राय भी क़ायम की। गांधीजी ने अपने दिल में यह तय कर लिया कि मज़दूरों को ३५ प्रतिशत से ज़्यादा भत्ता नहीं माँगना चाहिए। और, उनको एक मर्यादा के अंदर रखने के लिए इसी मतलब की सलाह भी दे देनी चाहिए। लेकिन साथ ही उन्होंने यह भी सोचा कि मज़दूरों को यह सलाह देने से पहले न्यायोचित यह होगा कि मिलमालिकों को अपने इस निश्चय की सूचना कर दी जाय, और इसके बारे में उनकी क्या राय है, उन्हें क्या कहना है, सो जान और सुन लिया जाय। यह सोचकर मालिकों को इस निश्चय की खबर दी गई, और उनसे प्रार्थना की गई कि वे इस संबंध में अपनी विस्तृत राय भेजें, और मदद भी करें। मिलमालिक कोई सहायता तो कर नहीं सकते थे; अतएव उन्होंने यह कहकर बात को उड़ाना चाहा कि सरकार और बम्बई के मिल-मालिक तो बहुत ही कम इज़ाफ़ा दे रहे हैं। उनकी यह सूचना न केवल अप्रस्तुत थी, बल्कि आज की हालत में उन्हें ख़ुद क्या देना चाहिए, इस सीधे सवाल को टालने का एक बहाना भी थी। अब गांधीजी और उनके साथियों के लिए मज़दूरों को ३५ प्रतिशत वृद्धि की माँग पेश करने की सलाह देने के सिवा और कोई मार्ग ही न रहा। अबतक जो मज़दूर महँगाई का ५० फ़ीसदी भत्ता माँग रहे थे, उनको उनके सलाहकारों ने ख़ूब समझा-बुझा कर ३५ फ़ीसदी से सन्तोष कर लेने की सलाह दी। मज़दूरों ने

भी थोड़ी आनाकानी के बाद अपने सलाहकारों के इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया ।

यहाँ यह कह देना ज़रूरी है कि 'आग्रह' का तत्त्व इसके पहले ही दोनों पक्षों के दिल में घर कर चुका था । ताना-खाते के मज़दूरों ने जबसे अपना संघ स्थापित किया था, तभी से मज़दूरों में ऐक्य और आग्रह की नींव पड़ चुकी थी । मज़दूरों के संगठन का सामना करने के इरादे से मिलमालिकों ने भी अपनी गुटबंदी शुरू कर दी थी । इन दोनों पक्षों के बीच २५ दिनों तक पूरी ताक़त और तनातनी के साथ, बिना किसी प्रकार की कटुता के, जो लड़ाई जारी रही, उसे अकेला अहमदाबाद शहर ही नहीं, बल्कि सारा गुजरात और कुछ हद तक सारा हिंदुस्तान भी दम साधे देख रहा था ।

आइये, हम इस लड़ाई की ख़ास-ख़ास घटनाओं को और इसके भीतरी रहस्यों को ज़रा निकट से देखें ।

जिस दिन मज़दूरों ने अपने सलाहकारों की सलाह मानकर सारी ज़िम्मेदारी उन पर छोड़ दी, उसी दिन से मज़दूरों के उमड़ते हुए उत्साह को ठीक राह पर लाने, और उनमें पाई जानेवाली 'मस्ती' पर और उनकी दूसरी ख़ासियतों पर लगाम चढ़ाने के खयाल से गांधीजी ने इस लड़ाई को 'धार्मिक' स्वरूप देने के उपाय सोचने शुरू किये । मज़दूरों के अन्दरूनी और बाहरी जीवन में घुसे बिना, उन्हें सिर्फ़ सलाह देते रहना शायद बेकार होता, और बिलकुल बेकार न होता, तो भी उसकी सफलता में कोई ख़ूबी, कोई अर्थ, न रह जाता; इसलिए यह तय पाया कि भिन्न-भिन्न उपायों से मज़दूरों के साथ सजीव संबंध बढ़ाया जाय, यानी उनमें घुलने-मिलने की कोशिश की जाय । इसके लिए नीचे लिखे तरीक़े सोचे गये :

१. मज़दूरों के घर-घर जाकर उनकी समूची हालत के बारे में पूछताछ करने, उनकी रहन-सहन में कोई कमी हो तो उसे सुधारने, संकट में उन्हें सहायता और सलाह देने, तथा उनके सुख-दुःख में भरसक हाथ बँटाने की कोशिश करना।

२. लड़ाई के दरम्यान अपने रुख और रवैये के बारे में मज़दूरों को कुछ सलाह-सूचना प्राप्त करनी हो, तो उसका ऐसा प्रबन्ध करना जिससे वह उन्हें तुरत प्राप्त हो सके।

३. रोज़ एक नियत स्थान पर मज़दूरों की आम-सभा करके उनको लड़ाई के सिद्धान्त और उसका रहस्य समझाना।

४. मज़दूरों के लिए रोज़ 'सुबोध पत्रिकायें' निकालना, ताकि लड़ाई के ये सिद्धान्त और इनका रहस्य उनके दिल में सदा के लिए अंकित हो जाय; उन्हें सरल और उच्च कोटि का साहित्य हमेशा मिलता रहे; उनके मन और बुद्धि की उन्नति हो, और उन्नति के इन साधनों को वे अपने बालबच्चों के लिए बपौती में छोड़ सकें।

(१) इस निर्णय के अनुसार जबतक लड़ाई चलती रही, सर्वश्री शंकरलाल बैंकर, अनसूयाबहन और छगनलाल गांधी रोज़ सुबह-शाम मज़दूरों के घर-घर घूमते; उनकी बस्तियों में जाकर उनके और उनके घरवालों के नाम-ठाम लिखते, उनके पारिवारिक आय-व्यय के आँकड़े जानते, और इस प्रकार भविष्य में उनकी हालत को सुधारने के लिए आवश्यक जानकारी प्राप्त करते; मज़दूरों में जो लोग लड़ाई से ऊब रहे थे, या भूख की पीड़ा से भयभीत हो रहे थे, उनको समझाते और हिम्मत दिलाते; मरीज़ों के लिए दवादारू का बंदोबस्त करते, और जो रोज़ी या मज़दूरी चाहते थे, उनके लिए वैसे साधन जुटाने की कोशिश करते थे।

सुबह-शाम की इन मुलाक़ातों का महत्त्व कुछ कम नहीं था। इनसे सारी मज़दूर दुनिया की नब्ज़ का पता चलता था। जैसा कि आगे चलकर मालूम होगा, इन मुलाक़ातों की बदौलत ही लड़ाई की नाज़ुक घड़ी में गांधीजी को अपना मार्ग सूझा था।

(२) सुबह-शाम मज़दूरों से उनके मुहल्लों में तो मिला ही जाता था। इसके अलावा दिन में किसी भी समय वे श्री० अनसूयाबहन के घर जाकर उनसे सलाह–मशविरा पा सकते थे। सैकड़ों मज़दूर रोज़ उनके मकान पर आते थे। आने का समय भी निश्चित न रहता था। लड़ाई के अख़ीरी दिनों में तो वे रात को एक-एक और दो-दो बजे अनसूयाबहन के किवाड़ खटखटाते थे, और वे ख़ुद भी बिना उकताहट या झल्लाहट के उन्हें हर वक्त सलाह-सूचना देने को तैयार रहती थीं।

(३–४) मज़दूरों तक सामूहिक रूप से आम ख़बरें पहुँचाने के लिए सभाओं और सुबोधपत्रिकाओं का प्रबन्ध किया गया था। रोज़ शाम को शाहपुर दरवाज़े के बाहर साबरमती के तट पर बबूल के एक पेड़ की छाया में सब मज़दूर इकट्ठा होते थे। उनमें कई तो दो-दो चार-चार मील से पैदल आते थे। सभा में सर्वश्री गांधीजी, अनसूयाबहन, शंकरलाल बैंकर और मज़दूरों के सवाल से सहानुभूति रखनेवाले दूसरे भाई-बहन उनसे मिलते थे।

इस बबूल की छाया में जो अनेक अद्भुत और ऐतिहासिक दृश्य समय-समय पर प्रकट हुए हैं, उनका पता वहाँ मौजूद रहनेवाले लोगों को छोड़ दूसरों को कम ही है। गांधीजी ने भरसक मूक कार्य को ही अपने जीवन का प्रधान व मूल मंत्र

बनाया है। अतएव उन्होंने हमेशा अपनी कोशिश भर इस बात का खयाल रक्खा है कि उनकी प्रवृत्तियों के बारे में अखबारों में सच्ची-झूठी खबरें जहाँ तक हो, न छपें। यही वजह है कि चम्पारन में 'जाँच' की मुख्य घटना को छोड़ वहाँ की जनता के आन्तरिक जीवन में परिवर्तन करने के लिए गांधीजी ने किन-किन उपायों से काम लिया और कितना परिवर्तन हुआ, इसका ठीक पता इतिहास का अध्ययन करनेवाली दुनिया को अकेले अखबारों से कभी चला ही नहीं। मज़दूरों की लड़ाई के दिनों में गांधीजी के जो व्याख्यान होते थे, उनका ब्यौरा जानबूझ कर अखबारों में नहीं दिया जाता था। अतः उन व्याख्यानों के कुछ स्मरणीय उद्गार, और जो सुबोध-पत्रिकायें मज़दूरों में बाँटी जाती थीं, उन पर किये गये विवेचनों के कुछ अंश यहाँ दे देना ज़रूरी मालूम होता है। यहाँ यह भी बता देना ज़रूरी है कि ये पत्रिकायें प्रकाशित तो अनसूयाबहन के नाम से होती थीं; लेकिन इन्हें लिखते गांधीजी ही थे। ये सब पत्रिकायें इस पुस्तक के अन्त में अक्षरशः दी गई हैं। व्याख्यानों का सारांश इस इतिहास में स्थान-स्थान पर आ ही जायगा।

शुरू-शुरू के व्याख्यान मज़दूरों को प्रतिज्ञा का रहस्य समझाने और उसके महत्त्व को उनके दिलों में ठँसाने के लिए ही हुए।

मज़दूरों की प्रतिज्ञा इस प्रकार थी :

१. जुलाई की तनख्वाह के साथ जब तक ३५ प्रतिशत वृद्धि न मिले, नौकरी पर न जाना।

२. 'लॉक आऊट' के क़ायम रहते किसी प्रकार का दंगा-फ़साद न मचाना; मार-पीट और लूटमार से बचना; मालिकों की जायदाद को किसी प्रकार की हानि न पहुँचाना; गाली-गलौच न करना और शान्ति से रहना।

मज़दूरों से कहा जाता था कि वे परमेश्वर को सामने रखकर यह प्रतिज्ञा करें। सभा में एक भी ऐसा मनुष्य नहीं होता था, जो सभा के एकसुर में अपना सुर न मिलाता हो। काम पर न जाने की प्रतिज्ञा लेनेवालों को जिन मुसीबतों का सामना करना पड़ सकता था, उनका ज़िक्र करते हुए एक सभा में गांधीजी ने कहा था :

'आज 'लॉक आऊट' का पांचवां रोज़ है। आपमें से कई मानते होंगे कि पाँच-पन्द्रह दिन दुःख सह लेने से सब कुछ ठीक हो जायगा। मैं आपसे बार-बार कहता हूँ कि हम यह उम्मीद ज़रूर रक्खें कि हमारा काम कुछ ही दिनों में खत्म हो जाय, लेकिन इसके साथ ही हमारा यह दृढ़ निश्चय भी हो, कि जबतक हमारी आशा पूरी न होगी, हम मरमिटना क़बूल करेंगे, लेकिन काम पर हरगिज़ न जायेंगे। मज़दूरों के पास रुपये-पैसे नहीं हैं; लेकिन याद रखिये कि रुपये-पैसे से भी अधिक मूल्यवान धन उनके पास है, और वह है, उनके हाथ-पैर, उनकी हिम्मत, और उनकी आस्तिकता! ऐसा समय भी आ सकता है, जब आपको भूखों मरना पड़े। उस वक्त के लिए आपको यह विश्वास रखना चाहिए कि आप लोगों को खिलाकर ही हम खायेंगे; आपको भूखों हरगिज़ न मरने देंगे।'

यहाँ कई मज़दूरों ने कहा कि ३५ प्रतिशत बहुत कम होता है। उनको समझाते हुए गांधीजी ने कहा था :

"कई भाई कहते हैं कि हम ३५ प्रतिशत से ज्यादा माँग सकते हैं। मैं तो कहता हूँ कि आप १०० प्रतिशत भी माँग सकते हैं। लेकिन यदि आप उतना माँगने लगें तो वह अन्याय ही कहा जायगा। मौजूदा हालत में आपने जो कुछ माँगा

है, उसीमें सन्तोष रखिये । यदि आप इससे ज्यादा मांगेंगे, तो मुझे दुःख होगा । हमें किसीके भी सामने कोई ग़ैरवाजिब मांग पेश नहीं करनी चाहिए । मेरी राय में ३५ प्रतिशत की मांग मुनासिब मांग है ।'

दूसरे दिन इसी सवाल के सिलसिले में उन्होंने कहा था:

'नेक सलाह देने और हिम्मत का सबक़ सिखानेवाले आपको कम मिलेंगे । नाहिम्मत करनेवालों की कमी न रहेगी । इनमें से कई आपके मित्र भी हो सकते हैं । ख़ुदा के नाम पर जितना मिल जाय उतना ले लेने की सलाह देनेवाले भी आपको बहुतेरे मिलेंगे । उनकी ऐसी सलाह यों सुनने में बहुत मीठी हो सकती है, लेकिन दरअसल उससे कड़ई कोई सलाह हो नहीं सकती । हमें परमात्मा को छोड़ और किसीके सामने अपनी दीनता नहीं दिखलानी है । यह कोई ज़रूरी नहीं कि निर्धनता के कारण हम अपने को दीन भी समझें । भगवान ने हाथ-पैर तो हममें से हरएक को दिये हैं । उनका उपयोग करके ही हम स्वराज्य या अपने राज्य का आनन्द उठा सकेंगे । मालिकों के साथ अच्छी तरह रह सकने के लिए भी हमें दृढ़ बनने की ज़रूरत है । आज जिस हालत में हम पड़े हुए हैं, उसे देखते हुए हमें अपने मालिकों से यह कहना चाहिए कि हम उनका यह बोझ और दबाव बरदाश्त नहीं कर सकते । आप मेरी सलाह से चलें या किसी और की सलाह से चलें, इतना मैं आपसे कह सकता हूँ कि इस मामले में तो मेरी या अन्य किसीकी सलाह और सहायता के बिना भी आप विजयी बन सकेंगे । यों, मेरी या दूसरे लाखों आदमियों की मदद पाकर भी आप जीत नहीं सकते; क्योंकि आपकी जीत या फ़तह का आधार आपके ही ऊपर है; आपकी

ईमानदारी आपकी आस्था और श्रद्धा, तथा आपकी हिम्मत ही आपको विजयी बना सकती है। हम तो सिर्फ़ आपकी सहायता कर सकते हैं; आपको टेका या सहारा दे सकते हैं; लेकिन खड़ा तो ख़ुद आप ही को होना पड़ेगा। बिना लिखे और बिना बोले जो प्रतिज्ञा आपने की है, यदि आप उस पर डटे रहेंगे, तो यक़ीन रखिये कि जीत आपकी ही है।'

छठे दिन की पत्रिका में यह बताया गया है कि प्रतिज्ञा-पालन के लिए जीवन में सत्य, निर्भयता, न्यायपरायणता, ईमानदारी, सहिष्णुता, और ईश्वर-श्रद्धा आदि गुणों के विकास की ज़रूरत है।

इस पत्रिका का मर्म समझाते हुए गांधीजी ने कहा था:

'यदि आप पहले से ही हार मानकर बैठ जाते, तो मुझे या अनसूयाबहन को आपके पास आने की कोई ज़रूरत न रह जाती। लेकिन आपने तो लड़ लेने का निश्चय किया है। और अब यह बात सारे हिंदुस्तान में फैल गई है। आगे चलकर दुनिया देखेगी कि अहमदाबाद के मज़दूरों ने ईश्वर को साक्षी रखकर इस बात की शपथ ली है कि जबतक उनकी अमुक माँग पूरी न होगी, वे काम पर नहीं लौटेंगे। भविष्य में आपके बालबच्चे इस पेड़ को देखकर कहेंगे कि इसीकी छाया में बैठकर हमारे मातापिताओं ने परमात्मा की साक्षी में कठिन प्रतिज्ञायें की थीं। यदि आप उन प्रतिज्ञाओं का पालन न करेंगे, तो वे बच्चे आपके बारे में क्या सोचेंगे? आप पर आपके बाल-बच्चों की आशायें निर्भर करती हैं। मैं आपमें से हरएक को चेताता और कहता हूँ कि खबरदार! किसीके बहकाने या फुसलाने में आकर ली हुई टेक न छोड़ना; प्रतिज्ञा से मुँह न मोड़ना; उस पर चट्टान की तरह अड़े रहना! आपको

भूखों मरना पड़े तो भी आप अपने बहकानेवालों से साफ़ कह दीजिये कि परमेश्वर को साक्षी रखकर जो प्रतिज्ञा आपने की है, उससे आपको कोई डिगा नहीं सकता। आपकी वह टेक गांधी के खातिर नहीं; ख़ुदा के खातिर है। आप इस पर यक़ीन रखिये, क़ायम रहिये, और लड़ लीजिये। हिन्दुस्तान देखेगा कि मज़दूर मर-मिटने को तैयार थे, क़सम छोड़ने को नहीं। आप इन पत्रिकाओं को बरज़बान कर लीजिये, और ली हुई प्रतिज्ञा पर सोच-समझकर डटे रहिये। मगर इन्हें खाली रट लेने से भी कोई फ़ायदा नहीं। यों तो तोता रटन्त के ढंग पर कइयों को क़ुरान शरीफ़ और गीता ज़बानी याद होती है; तुलसीदास की रामायण भी कइयों को कण्ठाग्र रहती है। लेकिन इतना ही काफ़ी नहीं। इन्हें याद करके अगर आप इन पर अमल भी करेंगे, तो यक़ीन रखिये कि पैंतीस के पौने पैंतीस कोई आपको न देगा।'

सातवें दिन की पत्रिका में मज़दूरों को समय का सदुपयोग करने के बारे में कई मामूली लेकिन साफ़-साफ़ और निश्चयात्मक बातें कही गई थीं। ये बातें इस खयाल से कही गई थीं कि मुमकिन है लड़ाई अर्सों तक चले और कइयों को उसमें भूखों मरने का मौक़ा आये। ऐसे समय हो सकता है कि उनसे ऐसी कोई मज़दूरी करानी पड़े, जो उन्होंने पहले कभी न की हो। इसके लिए यह ज़रूरी था कि उनमें किसी भी तरह के काम के लिए इज़्जत के खयाल पैदा हों। 'जिन धन्धों की मनुष्य को अपने जीवन के लिए ज़रूरत है, उन धन्धों में ऊँच-नीच का कोई भेद हो नहीं सकता। इसी तरह जिन धन्धों को हम जानते हैं, उनसे भिन्न दूसरे धन्धों को करने में शरमाने की कोई वजह नहीं हो सकती। हमारा विश्वास है कि कपड़े बुनना, मिट्टी फोड़ना या पत्थर तोड़ना, लकड़ी

काटना या चीरना, अथवा खेतों में मज़दूरी करना, ये सभी ज़रूरी हैं, और सम्माननीय हैं ।' पत्रिका के इन्हीं उद्गारों की व्याख्या करते हुए गांधीजी ने एक इतनी ही सच और सचोट बात अपने भाषण में कही थी, जो यहाँ उल्लेखनीय है : 'पत्थर तोड़ने से जो गरमी और ताक़त आती है, वह क़लम पकड़ने से नहीं आ सकती।'

इस प्रकार साधारण व्यवहार की सूचनायें दे चुकने के बाद आठवें दिन की पत्रिका इस ख़याल से लिखी गई कि जिससे मज़दूरों की श्रद्धा अपने सलाहकारों में अटल रह सके। इस पत्रिका में यह बताया गया था कि कुछ शर्तों के साथ सलाहकार लोग मज़दूरों के लिए क्या-क्या करने को बँधे हुए हैं । प्रतिज्ञा संबंधी इस लेख को मज़दूरों तक पहुँचाने से पहले गांधीजी ने उनसे कहा था : 'अब तक हमने मज़दूरों की प्रतिज्ञा और मज़दूरों के काम व कर्त्तव्य की चर्चा की है । अब हमें यह लिखकर देना है कि हमारी प्रतिज्ञा क्या है और हम क्या-क्या करनेवाले हैं । आज हम आपको यह बतायेंगे कि हमसे आप लोगों को क्या-क्या आशायें रखनी हैं, और परमात्मा को साक्षी रखकर हम आपके लिए क्या-क्या करते हैं । इस प्रतिज्ञा के आधार पर आपका काम होगा कि जब-जब आप हमें ग़लती करते हुए देखें, अथवा प्रतिज्ञा के पालन में कमज़ोरी दिखाते नज़र आयें, तब-तब आप हमें अपने इन वचनों की याद दिलायें और उलाहना दें ।' इस पत्रिका के विशेष उल्लेखनीय उद्गार ये हैं: 'हम मालिकों का अहित न तो कर सकते हैं, न चाह सकते हैं । अतः हमारे प्रत्येक कार्य में उनके हित का विचार तो रहता ही है । मालिकों के हित की रक्षा करके हम मज़दूरों का हित भी करें।' जब-जब ऐसे मौक़े मिले हैं, तब-तब गांधीजी ने मज़दूरों के दिल में यह ठँसाने की

कोशिश की है कि यह लड़ाई मालिकों को परेशान करने के लिए नहीं है, बल्कि अपने हित के साथ-साथ उनका हित करने के लिए है। जैसा कि हम आगे देखेंगे, इस प्रतिज्ञापत्र की प्रत्येक प्रतिज्ञा अक्षरशः पाली गई थी। इसकी नीचे लिखी प्रतिज्ञा तो इतिहास में सदा संस्मरणीय रहेगी: 'इस लड़ाई में जिन्हें भूखों मरने की नौबत आवेगी और जिनको कुछ काम न मिल सकेगा, उनको ओढ़ाकर हम ओढ़ेंगे, उन्हें खिलाकर हम खायेंगे।'

इसके बाद पत्रिकाओं का रूप बदलता है। अबतक यह खयाल था कि मिलमालिक कुछ दिनों तक मज़दूरों के धैर्य की परीक्षा करने के बाद उन्हें उन्हींकी शर्त पर पुनः काम पर बुला लेंगे; इसलिए जो मज़दूर दूसरी मज़दूरी की तलाश में आते थे, उन्हें सलाह दी जाती थी कि वे ज़रा धीरज से काम लें। उन्हें समझाया जाता था कि इस तरह दूसरा काम ढूँढ़ने की अधीरता दिखाने से लोग यह मानेंगे कि मज़दूर फिर से मिलमालिकों की नौकरी करना ही नहीं चाहते, और समझेंगे कि मज़दूरों ने द्वेषवश मालिकों के साथ ऐसा व्यवहार किया है। मज़दूर भी बेचारे चुपचाप बैठे थे और शान्ति-पालन सम्बन्धी सूचनाओं का अक्षरशः अमल करते थे। इसी समय यह प्रतीत होने लगा कि मिल-मालिक ३५ फ़ीसदी इज़ाफ़ा दे सकने की अपनी असमर्थता के कारण नहीं, बल्कि केवल हठवश मज़दूरों की माँग मंज़ूर नहीं कर रहे हैं। वे इस खयाल से हठ कर रहे थे कि अगर इस बार मज़दूर कामयाब हो गये, तो वे हमेशा के लिए उन्हें सताने लगेंगे और उनके सलाहकारों का काँटा हमेशा मालिकों के पैर में चुभता रहेगा। इस हठ की जड़ में रहे हुए भ्रम अथवा भय का निवारण नवें दिन की पत्रिका में बड़ी सुन्दरता के साथ किया गया।

है । 'मालिक डरते हैं कि मज़दूरों को मुँहमाँगा देने से वे गुस्ताख या उद्धत बन जायँगे । यह डर बेबुनियाद है । अगर मज़दूर आज दब भी गये, तो यह असंभव नहीं कि मौक़ा पाकर वे फिर सिर उठायें । हो सकता है कि इस तरह दबे हुए मज़दूर मन में बैरभाव रक्खें । दुनिया का इतिहास कहता है कि, जहाँ-जहाँ मज़दूर दबाये गये हैं, वहाँ-वहाँ उन्होंने बग़ावत की है । मालिकों का यह खयाल है कि मज़दूरों की माँग को मंजूर कर लेने से उन पर उनके सलाहकारों का प्रभाव बढ़ जायगा । अगर सलाहकारों की दलीलें सच होंगी और वे मेहनती होंगे तो मज़दूर हारें या जीतें, वे अपने सलाहकारों को कभी न छोड़ेंगे । इससे भी बढ़कर ध्यान देने की बात तो यह है कि सलाहकार मज़दूरों का साथ न छोड़ेंगे । **जिन्होंने सेवाधर्म को अपनाया है, वे अपने स्वामी का विरोध रहते हुए भी उस धर्म को छोड़ नहीं सकते। ज्यों-ज्यों वे निराश होंगे, त्यों-त्यों अधिक सेवापरायण बनते चलेंगे। अतएव मालिक कितनी ही कोशिश क्यों न करें, वे सलाहकारों को मज़दूरों के सहवास से दूर नहीं हटा सकेंगे** '। मालिकों को इस प्रकार सलाहकारों और मज़दूरों के बीच के चिरस्थायी सम्बन्ध की चेतावनी देने के बाद आगे की पत्रिका में गांधीजी मालिकों की स्थिति का विवेचन शुरू करते हैं । यह और इसके बाद की कुछ पत्रिकायें केवल मज़दूरों के लिए ही नहीं, मिलमालिकों के लिए भी लिखी गई हैं । इन पत्रिकाओं का हेतु केवल मिलमज़दूरों को सिखाना ही नहीं, बल्कि हो सके तो मिलमालिकों की बुद्धि में परिवर्तन करना भी रहा है ।

कई बरस पहले गांधीजी ने अपने '.इंडियन ओपीनियन' में रस्किन की Unto This Last पुस्तक के आधार पर

'सर्वोदय' नामक एक लेख प्रकाशित किया था। इस लेख में उन्होंने बताया था कि नौकर और मालिक के सम्बन्ध को एक-दूसरे के स्वार्थ की भावना से आबद्ध न रहकर एक-दूसरे के सुख पर निर्भर करना चाहिए; लेन-देन की नीति पर क़ायम न होकर पारस्परिक सहानुभूति पर क़ायम रहना चाहिए। यही विचार अब समय के साथ अधिक दृढ़ बन चुके थे, अतएव इन पत्रिकाओं में ज्यादा सरल, सीधी और ज़ोरदार भाषा में प्रकट किये गये हैं। नीचे लिखे शब्दों में अंकित हृदयस्पर्शी और विवेकपूर्ण आग्रह किसको प्रभावित न करेगा? 'मज़दूरों के मुक़ाबले में मालिकों का संगठन चींटियों के मुकाबले में हाथियों का संघ खड़ा करने के समान है। यदि मालिक धर्म का विचार करें, तो उन्हें मज़दूरों का विरोध करते हुए काँप उठना चाहिए। जहाँ तक हमें पता है, हिन्दुस्तान में पहले कभी लोगों ने इस बात को न्यायोचित नहीं माना कि मालिक मज़दूरों की भूख-प्यास को, उनकी फ़ाक़ेकशी को, अपने लिए सुअवसर मानें। हमने तो विश्वास के साथ यह आशा रक्खी है कि गर्वीले गुजरात की राजधानी के श्रावक अथवा वैष्णवधर्मी मालिक अपने मज़दूरों को झुकाने में, उन्हें हठात् कम तनख़्वाह देने में, कभी अपनी जीत न समझेंगे।'

इसके बाद की पत्रिका में यह बताया गया है कि एक-दूसरे के स्वार्थ पर क़ायम होनेवाले राक्षसी संबन्धों का नतीजा कितना बुरा होता है। इसका ज़िक्र करते हुए गांधीजी ने दक्षिण आफ्रीका की लड़ाई की एक रोचक घटना का वर्णन मज़दूरों को सुनाया है। और साथ ही, उन्हें यह भी बता दिया है कि ऐसे अवसर पर उनको किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिए। पत्रिका की व्याख्या करते हुए गांधीजी ने कहा था कि जिस तरह दक्षिण आफ्रीका में

हमारे मज़दूरों ने यूरोपियन मज़दूरों की हड़ताल के कारण संकट में पड़ी हुई आफ्रीकन सरकार के संकट से लाभ नहीं उठाया, बल्कि उस समय अपनी लड़ाई बन्द करके सरकार की सहायता की और दुनिया में नाम कमाया, उसी प्रकार यदि मिलमालिकों पर कोई आकस्मिक संकट आ पड़े, तो हमें उससे लाभ उठाने का या मालिकों को परेशान करने का खयाल छोड़कर उनकी मदद पर दौड़ पड़ना चाहिए।

अब हम देखें कि अबतक के उपदेश का मिलमज़दूरों पर क्या असर पड़ा था। जब हड़ताल शुरू हुई, तो अहमदाबाद शहर में प्रायः सर्वत्र लोग त्रस्त-से नज़र आते थे। लोगों के दिलों में आमतौर पर हमेशा यह डर बना रहता था कि कहीं भड़के हुए मज़दूर रास्ते में हुल्लड़ न मचा बैठें, चोरी न कर बैठें, मार-पीट और हुरदंग पर आमादा न हो जायँ। लेकिन इन दस दिनों में जनता को किसी प्रकार का कोई दंगा-फ़साद नज़र न आया, इससे लोगों को बड़ा अचरज हुआ। ज़िले के कलेक्टर ने, जिनसे इस दरम्यान गांधीजी मिले थे, मज़दूरों के व्यवहार पर अपनी ओर से सानंद आश्चर्य प्रकट करके कहा था, कि इस तरह शान्ति और संयम के साथ लड़ी जानेवाली लड़ाई उन्होंने और कहीं नहीं देखी थी; न कभी ऐसी लड़ाई के बारे में सुना था। रोज़ शाम को शाहपुर दरवाज़े के बाहर चार-साढ़ेचार बजे से दल के दल मज़दूर बबूल की छाया में जमा होते थे। सभा के लिए दूर-दूर से आने में उन्हें ज़रा भी कष्ट या उकताहट न मालूम होती थी। रोज़-रोज़ प्रकाशित होनेवाली पत्रिकाओं को वे उत्साह से पढ़ते और अपने अनपढ़ भाइयों को पढ़कर सुनाते। गांधीजी, अनसूयाबहन, शंकरलाल बैंकर आदि उनके जो सलाहकार रोज़

शाम को सभा में आते, उनका वे उत्साहपूर्वक स्वागत करते; हज़ारों की भीड़ के बीच से उन्हें शांतिपूर्वक जाने-आने देते; जब गांधीजी भाषण करते या पत्रिका पढ़ते, तब सभी अपूर्व शान्ति के साथ उनकी बातों को सुनते और भाषण के अन्त में प्रतिदिन अपना निश्चय ऐसे मनोहर ढँग से प्रकट करते कि दिन-ब-दिन इन सभाओं को देखने आनेवाले बाहरी लोगों की संख्या बढ़ने लगी। जिन बच्चों ने और बड़ों ने इन सभाओं को देखा है, वे इन्हें कभी भूल नहीं सकते। अनपढ़ होते हुए भी अधिकतर मज़दूरों के हृदय से नये-नये समयानुकूल दोहों और गज़लों आदि का जो प्रवाह प्रतिदिन प्रकट होने लगा था वह आदमी को आश्चर्य में डालनेवाला था। कोई कह सकता है कि उनमें से कई तो कुछ सामयिक बातों को लक्ष्य करके रची हुई तुकबन्दियाँ ही थीं। सच है; लेकिन उन तुकबन्दियों में पाई जानेवाली उच्च भावनाओं, आग्रह, निश्चय एवं कृतज्ञता के बारे में दो मत हो नहीं सकते। इन तुकबन्दियों में से एक इस लेख के आरंभ में दी गई है। मुसलमान मज़दूरों के कुछ भावपूर्ण उद्गारों का प्रभाव भी मामूली न रहा होगा : 'ऐसा इत्तफ़ाक़ आइंदा न कभी होगा; न कभी हुआ था। महात्मा गांधी वह पेड़ हैं, जिसकी शाखें सारे हिन्दुस्तान में फैली हुई हैं। अपनी पाबन्दी, अपनी इज्ज़त, आनबान पर क़ायम रहिये। जहाँ तक मुमकिन हो, इत्तफ़ाक़ कभी मत तोड़िये; तोड़ने का खयाल भी मन में न लाइये। जो हमारे खैरख्वाह बने हैं, उनका दामन कभी न छोड़िये। हमारे जो सरताज हमारे सुखदुःख में शामिल हैं, यानी हमसे हमदर्दी रखते हैं, उनके नाम को धब्बा न लगना चाहिए। बिना अपने सरताज के काम पर जाना नहीं। अगर वे फ़र्मावें कि मुफ़्त में काम

करो, तो मुफ़्त में काम करना। इससे किसीकी बेइज़्ज़ती नहीं होगी। हमारे जिन सरताजों ने हमारी हमदर्दी पर कमर बाँधी है, उनको मानना।' कुछ दिनों के अन्दर ही मज़दूरों के कई उद्गार तो कहावतों की तरह चल पड़े: 'अरे, डरो मत, ग़ैबी मददगार है यहाँ।' 'अगर मरें भूखों मर ही जाना जान से; लाज़िम है न बदलें अपने ईमान से।' आदि कुछ फ़िक़रे तो आज भी लोग भूल नहीं पाये हैं। मज़दूरों के ये सभी उद्गार इस बात को साबित करते हैं कि रस्किन जिसे roots of honour कहता है, और जिसे गांधीजी ने 'सर्वोदय' में 'सच्चाई की जड़' कहा है, उस सच्चाई की जड़ें इन ग़रीबों में दूसरे वर्गों की अपेक्षा बहुत गहरी हैं।

यहाँ प्रसंगोपात्त यह कह देना ज़रूरी मालूम होता है, कि जब सारा काम यों शान्त और सरल रीति से चल रहा था, तब भी गांधीजी इस बात की बड़ी चिन्ता रखते थे कि जाने-अनजाने भी ऐसी कोई बात कही या की न जाय, जिससे विपक्षियों को थोड़ा भी बुरा लगे। एक बार एक आशुकवि मज़दूर ने बहुत उत्साह में आकर अपने दोहों में मिल के यंत्रों की हंसी उड़ाई, और मिलमालिकों का ख़ूब मज़ाक उड़ाया, जो कुछ हद तक तिरस्कारयुक्त भी था। इस पर गांधीजी ने यों कहा था: 'आप यंत्रों को 'निरे ढाँचे' कहकर उनका मज़ाक उड़ाते हैं, यह उचित नहीं है। बेचारे यंत्रों ने आपका कोई नुक़सान नहीं किया है। अभी कल आप उन्हींकी मदद से अपनी रोज़ी कमाते थे। अतएव अपने कवियों से मैं निवेदन करूँगा कि वे कडुई बातें न कहें; मालिकों पर किसी तरह के आक्षेप न करें। इस कहने में कोई सार नहीं, कि हमारी वजह से मालिक मोटरों में सैर करते

हैं। ऐसी बातों से हमारी क़ीमत घटती है। मैं तो यह कहता हूँ कि सम्राट जॉर्ज भी हमारे प्रताप से अपना राज्य चलाते हैं। लेकिन इन बातों से हमारी कोई क़ीमत रहती नहीं। यह कहकर कि अमुक आदमी बुरा है, हम अच्छे नहीं बन जाते। बुरे की बुराई को देखनेवाला ऊपर बैठा हुआ है। वह उसे सज़ा देता है। हम न्याय करनेवाले होते कौन हैं? हम तो सिर्फ़ यही कहें कि मिलमालिक हमें ३५ प्रतिशत भत्ता नहीं देते, यह उनकी भूल है।'

जब एक ओर यह हवा बह रही थी, दूसरी ओर से इसे रोकने की तैयारियाँ भी कम न हो रही थीं। थोड़े में यही कहा जा सकता है कि मालिकों की ओर से मज़दूरों को बहकाने और फुसलाने की अनेक चालें चली जा रही थीं। मज़दूरों में से जिन पर इस तरह के दबाव का तुरन्त असर पड़ता था, वे भी अपने मन की उलझन को मिटाने के लिए सलाहकारों से मिलने आते थे, और बिना सोचे-समझे कोई काम न करते थे। इन लोगों को और भी मज़बूत बनाने के लिए गांधीजी ने बारहवें दिन की पत्रिका में कुछ आधुनिक सत्याग्रहियों के उदाहरण दिये हैं। इस तरह जिन मज़दूरों को कभी दक्षिण आफ्रीका के सत्याग्रह का क़िस्सा मालूम न हो पाता, उन्हें भी अनायास ही वहाँ के सत्याग्रही वीरों का परिचय प्राप्त हो गया। इन वीरों के पराक्रमों का वर्णन ऐसे प्रभावशाली ढंग से किया जाता था कि कोई भी विचारशील श्रोता इनके दृष्टान्त को कभी भूल नहीं सकता था। हरबतसिंह, काछलिया और वालियामा के बारे में पत्रिका में जो कुछ लिखा है, उसके सिवा अपने भाषण में उनका ज़िक्र करते हुए गांधीजी

ने कहा था : 'ये तीनों जब जेल गये और सरकार से लड़े, तब इन्हें न तो तनख्वाह लेनी थी, न भत्ता लेना था । इन तीनों को कर भी नहीं देना था । काछलिया बड़े व्यापारी थे । उन्हें कर नहीं देना पड़ता था । हरबतसिंह कर का क़ायदा बनने से पहले आये थे, इसलिए कर के बोझ से वे भी बरी थे । वालियामा जिस जगह रहती थी, वहाँ कर का यह क़ायदा उस व़क्त तक जारी नहीं हुआ था । फिर भी टेक के खातिर ये लोग सबके साथ लड़ाई में शामिल हुए थे । आपकी लड़ाई तो स्वार्थ की है । इसलिए आपका इस पर डटे रहना अधिक आसान है । मैं चाहता हूँ कि यह विचार आपको बल दे और दृढ़ बनाये ।' तेरहवें दिन की पत्रिका में उन मुसीबतों का दिल दहलानेवाला बयान दिया गया था, जिनका सामना इन वीरों ने किया था : '२०,००० मज़दूर क़रीब तीन महीनों तक बिना घरबार के और बिना तनख़्वाह के रहे थे । कइयोंने अपनी जमापूँजी भी बेच डाली थी । झोंपड़े खाली कर दिये थे। खाट, गादी-गदेले, मवेशी वग़ैरा बेच डाले थे, और कूच पर चल पड़े थे । उनमें से सैकड़ों ने कई दिनों तक बीस-बीस मील की लंबी मंजिलें तय की थीं और सिर्फ़ डेढ़ पाव आटे की रोटियाँ एवं ढाई तोला शकर पर दिन बिताये थे । इनमें हिन्दू भी थे, मुसलमान भी थे । . . . . इसी लड़ाई में जिन स्त्रियों ने कभी मज़दूरी नहीं की थी, वे भी घर-घर फेरीवाली बनकर घूमी थीं और जेल में उन्होंने धोबिन तक का काम किया था । इन उदाहरणों का खयाल करते हुए हममें ऐसा कौन मज़दूर होगा, जो अपनी टेक के लिए मामूली मुसीबतें उठाने को भी तैयार न हो ?' इस तरह सीधी-सादी भाषा में मज़दूरों के सामने दक्षिण आफ्रीका का इतिहास दुहराया जाता था, और

अप्रत्यक्ष रीति से पत्रिका के सर्वसाधारण पाठकों की ज्ञानसमृद्धि में वृद्धि भी होती थी।

मज़दूरों की तकलीफ़ें बराबर बढ़ रही थीं। उनमें कई तो नई मज़दूरी पाने के लिए उतावले हो रहे थे। उनकी परेशानियों को देखकर अकसर कई मित्रों को यह खयाल हो आता था कि मज़दूरों को यथेच्छ आर्थिक सहायता दी जाय। बाहर के मित्रों से भी मज़दूरों के लिए कोई फण्ड शुरू करने की चिट्ठियाँ आने लगी थीं। कइयोंने पैसा भेजने की तत्परता भी दिखाई थी। लेकिन गांधीजी ने इनको बढ़ावा न दिया। कारण स्पष्ट था। गांधीजी इन सब हितैषियों को बार-बार कहते थे: 'अगर मज़दूर इस आशा से सत्याग्रह में शामिल हुए हों कि आप पैसे-टके से मदद करके सत्याग्रह करायेंगे, अथवा अपनी आर्थिक मदद से उनको इस लड़ाई में टिकाये रक्खेंगे, तो फिर सत्याग्रह का अर्थ ही क्या हुआ? उसका महत्त्व क्या रहा? सत्याग्रह की ख़ूबी तो इसमें है कि सत्याग्रही सब तरह के दुःखों को राज़ी-ख़ुशी से सहन करें। वे जितना अधिक दुःख सहते हैं, उतनी ही अधिक उनकी परीक्षा होती है।' मज़दूरों को रोज़-रोज़ सभाओं में और बाहर भी समझाया जाता था: 'आपने अबतक अपने पसीने का पैसा कमाया है, इसलिए अब मुफ़्त में किसीसे पैसा माँगने के लिए हाथ न पसारिये। इसमें आपकी कोई इज्ज़त नहीं; उलटे लोग यह कहकर आपका मज़ाक उड़ायेंगे कि आप पराये पैसों के बल पर लड़े हैं।' मज़दूर भी इस बात को समझते थे, पर उनमें कइयोंको तो भूखों मरने की नौबत आ लगी थी, अतएव उनकी मदद करना ज़रूरी हो गया था। ऐसों के लिए कुछ काम ढूँढ़े गये। साबरमती के किनारे गांधीजी का आश्रम बन रहा था।

जो मज़दूर वहाँ जाते थे, उन्हें ईंटें उठाने और रेत वगैरा ढोने का काम बताया जाता था। शुरू में मज़दूरों को थोड़ी झिझक-सी मालूम होती, वे इस तरह की मज़दूरी करने में अपनी हेठी समझते, लेकिन बाद में वे समझ गये कि अपनी मेहनत से कमा-कर खाने में ही इज्ज़त है।

इधर शहर में भी कुछ खलबली-सी पैदा हो गई थी। लोग सोचने लगे थे: 'आखिर इस लड़ाई का नतीजा क्या होगा? दोनों अपने हठ पर डटे हुए हैं।' फलतः कई सज्जन तरह-तरह के सन्धि प्रस्ताव लेकर आते। कोई कहता, 'अभी २० प्रतिशत ले लीजिये, फिर १५ प्रतिशत तुरन्त ही बढ़ा दिये जायँगे'। कोई कहता, 'मज़दूरों को २० सैकड़ा वेतन पर भत्ते के और १५ सैकड़ा महँगाई के अनाज या दाने के रूप में लेने चाहिएँ'। कोई कहता, 'मज़दूरों की प्रतिज्ञा ही क्या? आप उन्हें सलाह देंगे, तो वे प्रतिज्ञा को भूलकर २० सैकड़ा ले लेंगे। अगर मालिक अपना हठ नहीं छोड़ते, तो मज़दूरों को छोड़ना चाहिए। नहीं, इससे आखिर सारे मिल-उद्योग की ही हानि है'। ऐसी अनेक सूचनायें आने लगी थीं। एक दिन श्री० जीवणलाल बैरिस्टर ऐसी ही एक सूचना लेकर आये। गांधीजी ने दूसरे दिन उन्हें नीचे लिखा पत्र भेजा:

'विज्ञ बन्धु,

मुझको समझाने की ज़रूरत ही क्या है? क्या आपको शक है कि मुझसे हो सकता, और मैं आपकी न सुनता? मैं हठ कर ही नहीं सकता। दुनिया धोखा खा सकती है। आप नहीं खा सकते। करुणा मेरे रोम-रोम से उमड़ रही है। यह 'लॉक आउट' मेरे लिए विनोद नहीं है। मैं अपनी कोशिश भर यत्न करता

रहता हूँ। अपनी प्रत्येक प्रवृत्ति में और सभी कामों में मेरी यही वृत्ति रहती है कि यह चीज़ जल्दी से जल्दी खतम हो; लेकिन कुछ मित्र इसे बढ़ा रहे हैं। मुझे समझाना निरर्थक समझकर आप मालिकों को समझायें तो? मालिकों के सामने पराजय-जैसी कोई चीज़ नहीं। मज़दूरों को पराजित करके कौन सुखी होगा? विश्वास रखिये कि अन्त में शिक्षितों और धनिकों के बीच कोई कड़ुवाहट न रह जायगी। हम झगड़ा करना ही नहीं चाहते।'

उसी दिन गांधीजी ने सेठ मंगलदास गिरधरदास के नाम नीचे लिखा पत्र भेजा था। सेठजी मिलमालिकों के दल में शामिल नहीं हुए थे। उन्होंने हड़ताल के दिनों में भी मज़दूरों को पुराना बोनस देकर अपनी मिल चालू रक्खी थी।

'कई मित्र मुझसे मिलने आते हैं और मुझे समझाते हैं कि किसी भी तरह मुझको मज़दूरों और मालिकों का यह झगड़ा खतम करा देना चाहिए। मैं इसे अपने प्राण देकर भी खत्म कर सकूँ, तो करना चाहता हूँ। लेकिन इस तरह यह खत्म होगा नहीं। इसे मिटाना मालिकों के हाथ में है। इस हठ का मतलब क्या कि मज़दूर माँगते हैं, इसलिए ३५ सैकड़ा न देंगे? यह क्यों मान लिया जाता है कि मैं मज़दूरों को सभी कुछ समझा सकता हूँ? मैं कहता हूँ कि जिन उपायों से मैंने काम लिया है, उन्हीं के कारण अबतक मज़दूर हाथ में रह सके हैं। अब मैं उनकी प्रतिज्ञा तुड़वाने के उपाय करूँ? उस हालत में क्या उन्हें यह हक़ न होगा कि वे मेरा सिर धड़ पर न रहने दें? सुनता हूँ कि मालिकों को मुझसे कई शिकायतें हैं। मगर मैं निश्चिन्त हूँ। किसी दिन वे ख़ुद स्वीकार करेंगे कि मेरा कोई क़सूर न था। उनसे मेरा ज़रा भी मनमुटाव न होगा, क्योंकि मैं उसमें भाग

ही न लूँगा । खटाई के लिए भी तो जामन की ज़रूरत होती है न? मुझसे उन्हें जामन नहीं मिलेगा । लेकिन आप इसमें आगे क्यों नहीं बढ़ते? आप यों दर्शक बनकर इस जंगी लड़ाई को दूर से कैसे देख सकते हैं?'

लेकिन इस सबका कोई नतीजा न निकला । इधर गांधीजी की पत्रिकायें निकलती थीं, तो उधर मिलवालों की ओर से भी महज़ पत्रिका निकालने के खयाल से पत्रिकायें निकलने लगी थीं। इन पत्रिकाओं में सत्य से विपरीत जो बातें छपती थीं और जैसी अशोभन भाषा में छपती थीं, यहाँ उसका उल्लेख करके उन पत्रिकाओं को चिरस्थायी रूप देने की ज़रूरत नहीं मालूम होती। गांधीजी ने भी उनकी अवहेलना ही की है । मज़दूरों को काम पर बुलाने की और उनसे उनकी प्रतिज्ञा तुड़वाने की कई कोशिशें होती रहती थीं; भूख-प्यास के कष्टों की भयंकरता बढ़ाचढ़ाकर सामने रक्खी जाती थी; लेकिन वे अपने सलाहकारों से मिलकर इन सब बातों की चर्चा कर जाते और तुरन्त ही अपने मन को स्वस्थ बनाकर वापस लौट जाते । ता० १२ मार्च के दिन स्थिति कुछ बदली । अबतक मिलमालिकों ने 'लॉक आउट' का ऐलान कर रक्खा था, इस-लिए मज़दूर किसी भी प्रकार काम पर जा ही न सकते थे। १२ तारीख को 'लॉक आउट' रद किया गया और कहा गया कि, जो मज़दूर २० सैकड़ा भत्ता लेकर काम पर आने को तैयार हों, उनके लिए मिलें खुली हैं । उस दिन से गांधीजी ने रोज़ सवेरे सभायें करने का निश्चय किया । हेतु इसका यही था कि सुबह का समय काम पर जाने का होता है, कहीं ऐसा न हो कि उस समय कच्चे दिल के नासमझ मज़दूर किसीकी फुसलाहट में आकर काम पर

चले जायें। जिस दिन 'लॉक आउट', खत्म हुआ और मज़दूरों की हड़ताल शुरू हुई, उस दिन की पत्रिका में जहाँ दो बातें नसीहत की मज़दूरों के लिए हैं, तहाँ मालिकों के लिए भी कुछ सूचनायें साफ़ शब्दों में दी गई हैं: 'मज़दूरों के सामने काम पर चढ़ने का एक ही तरीक़ा है, और वह यह कि वे अपनी प्रतिज्ञा पर डटे रहें। हमारा विश्वास है कि आज की हालत में मिल-मालिकों की उन्नति भी इसीमें है कि मज़दूर अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहें। **जो लोग अपनी टेक को निभा नहीं सकते, उनसे मज़दूरी कराकर भी आख़िर मालिकों को कोई फ़ायदा न होगा।** धर्मप्राण आदमी दूसरों से उनकी प्रतिज्ञा तुड़वाकर कभी ख़ुश न होगा, न प्रतिज्ञा तुड़ाने में भाग ही लेगा।' जब सामनेवाले मज़दूरों को काम पर बुलाने की कोशिश करने लग गये, तो मज़दूरों की ओर से भी उनको अपनी टेक पर क़ायम रखने के प्रयत्न होने लगे। इन्हीं दिनों गांधीजी के पास यह शिकायत आई कि कुछ अति उत्साही मज़दूर कच्चे-पोचे मज़दूरों को डरा-धमकाकर काम पर जाने से रोकते हैं। गांधीजी इस चीज़ को कभी सह नहीं सकते थे। वे तो शुरू से कहते आये थे कि मज़दूरों के हृदय को, उनकी भावनाओं को, प्रभावित करके उन्हें अपनी आन पर अड़े रहने को कहो; ज़ोर-ज़बर्दस्ती या ज़ुल्म करके नहीं। दूसरे दिन तुरन्त ही निरी प्रामाणिकता से छलकती हुई एक पत्रिका निकाली गई: 'मज़दूरों की लड़ाई का सारा आधार उनकी न्यायोचित माँग और न्यायपूर्ण कार्य पर है। अगर माँग अनुचित है, तो मज़दूर कभी जीत नहीं सकते। माँग के उचित होने पर भी अगर उसकी पूर्ति के लिए वे अन्याय का उपयोग करेंगे, झूठ बोलेंगे, दंगा-फ़साद मचायेंगे, दूसरों को

दबायेंगे या आलस्य से काम लेंगे, और इस तरह परेशान होंगे, तो भी अन्त में जीत नहीं पायेंगे।'

लेकिन कुछ तो इस पत्रिका के कारण, और कुछ रोज़-रोज़ निर्माण होनेवाली परिस्थितियों के कारण एक अनसोचा-सा परिणाम पक रहा था। अति उत्साही लोगों पर इस पत्रिका का प्रभाव कुछ उलटा ही पड़ा। कइयोंको आशा थी कि मज़दूरों को रोक रखने की जो कोशिशें उन्होंने की हैं, वे सराही जायँगी। ऐसों-को इस पत्रिका से कुछ निराशा हुई। दरअसल नासमझ होने के कारण भी कुछ लोगों को इस सीधी-सच्ची सलाह से बुरा लगा। वे कच्चे-कमज़ोर मज़दूरों से कहने लगे कि जिन्हें जाना हो, जाओ। रास्ता खुला है, कोई रोकनेवाला नहीं है। जो नैतिक दबाव से काम ले रहे थे, वे भी उस दबाव को शिथिल करने लगे। इससे कई मज़दूरों के दिल बदल गये, कोई कुछ कहने लगा, कोई कुछ। सर्वश्री अनसूयाबहन, शंकरलाल बैंकर और छगनलाल गांधी मज़दूरों से उनके मुहल्लों, में मिलने के लिए रोज़ नियम-पूर्वक जाते ही थे। जो मज़दूर मज़दूरी करना चाहते थे, वे आश्रम में आकर काम करते और मज़दूरी पाते थे। लेकिन मज़दूरों में कुछ खोटे सिक्के भी थे। वे अपने मन में सोचा करते: 'हम नाहक परेशान हो रहे हैं। प्रतिज्ञा से कुछ होगा-जायगा नहीं। ये सब हवाई बातें हैं। खाने-पीने की साँसत बढ़ रही है; मज़दूरी हो नहीं पाती; मुफ्त की सलाह देनेवालों को कोई तकलीफ़ है? तकलीफ़ तो हमें है।' उधर मिलमालिक अपने दिल को वज्र से भी अधिक कठोर बनाने लगे। किसी भी दशा में ३५ प्रतिशत भत्ता न देने का उनका आग्रह दृढ़ से दृढ़तर होता जाता था, और मज़दूरों को उनकी टेक से डिगाने के लिए उन्होंने

अपने कई आदमी छोड़ रक्खे थे । इस तरह बाईस दिन बीत गये। भूख-प्यास का कष्ट और मिलमालिकों के जासूस अपना काम कर रहे थे; और शैतान उनके कान में गुनगुना रहा था: 'दुनिया में दीनबन्धु परमेश्वर नाम की कोई हस्ती नहीं है, और प्रतिज्ञायें तो निराशों के आँसू पोंछने को हैं।' एक दिन जब भाई छगनलाल, जुगलदास की चाल में रहनेवाले मज़दूरों से सुबह की सभा में आने की प्रार्थना कर रहे थे, मज़दूरों ने कुछ इसी तरह की बातों से उनका स्वागत किया था: 'गांधीजी को और अनसूयाबहन को क्या तकलीफ़ है? वे मोटर में आते हैं, मोटर में जाते हैं। अच्छा खाते-पीते हैं। यहाँ तो मारे भूख के जान निकल रही है। सभा में आने से हमारी भूख थोड़े ही मिट जायगी।' ये बातें गांधीजी तक पहुँचीं। वैसे गांधीजी पर किसीकी टीका का असर नहीं होता; निन्दा से भी वे नहीं घबराते; लेकिन वस्तुस्थिति की सूचक इन कड़वी बातों से उनका हृदय विदीर्ण हो उठा। वे दूसरे दिन सुबह सभा में गये। वहाँ उन्होंने क्या देखा? उनके खिन्न हृदय और उनकी करुणार्द्र दृष्टि को वहाँ क्या दिखाई पड़ा? उन्हीं-के शब्दों में सुनिये: 'अविचल आत्मनिश्चय की प्रभा से चमकनेवाले दस-पाँच हज़ार मज़दूरों के प्रफुल्ल चेहरों के बदले निराशा से खिन्न मुखवाले कोई एकाध हज़ार आदमी मैंने देखे।' कुछ ही समय पहले जुगलदास की चाल में कही गई बातें उन तक पहुँची थीं। 'मैंने देखा कि मज़दूरों का उलाहना वाजिब है। मैं परमात्मा की सत्ता में उतना ही विश्वास रखता हूँ, जितना यह पत्र लिखते समय अपनी सत्ता में रखता हूँ। मैं उन लोगों में हूँ, जो मानते हैं कि मनुष्य को अपनी प्रतिज्ञा का पालन हर हालत में, सब प्रकार के कष्ट उठाकर भी करना चाहिए। मैं यह

भी जानता था कि मेरे सामने बैठे हुए लोग परमात्मा से डरने-वालों में हैं; लेकिन यह अनसोचा लम्बा 'लॉकआउट' उनकी हद से ज़्यादा परीक्षा कर रहा है। हिन्दुस्तान की अपनी लम्बी-चौड़ी यात्राओं में मैंने सैकड़ों ऐसे लोगों को देखा है, जो इधर प्रतिज्ञा लेते हैं और उधर उसे तोड़ देते हैं। मैं अपने इस अनुभव की भी कभी उपेक्षा नहीं कर पाया हूँ। मुझे यह भी मालूम था कि हममें से अच्छे-अच्छों को आत्मबल में और परमात्मा में एक अस्पष्ट-सी और अनिश्चयात्मक श्रद्धा है। मैंने अनुभव किया कि मेरे लिए तो यह एक शुभ घड़ी है; इससे मेरी श्रद्धा की परीक्षा हो रही है। मैं तुरन्त ही उठा और उपस्थित लोगों से कह दिया कि 'मैं इस बात को एक क्षण के लिए भी सह नहीं सकता कि आप अपनी प्रतिज्ञा से टलें। जब-तक आपको ३५ टका भत्ता नहीं मिलता, अथवा आप सब हार नहीं जाते, तबतक मैं न खाना खाऊँगा और न मोटर का ही उपयोग करूँगा'।

इस प्रतिज्ञा का उच्चारण होते ही सभा में जो कुछ हुआ, उसका वर्णन करने के लिए किसी कवि की लेखनी चाहिए। सभा में बैठे हुए प्रत्येक व्यक्ति की आँख से चौधार आँसू बहने लगे। हरएक ने अपने मन में यह महसूस-सा किया कि कोई बड़ी (गंभीर) ग़लती हो गई है। गांधीजी को हमारी किसी कमज़ोरी या कसूर से भारी सदमा पहुँचा है, और इसीलिए वे उस कमज़ोरी या कसूर का प्रायश्चित्त करने को तैयार हुए हैं। बात की बात में लोग परिस्थिति को ताड़ गये और फिर एक के बाद एक उठकर कहने लगे: 'हम अपनी प्रतिज्ञा से कभी नहीं डिगेंगे। कुछ ही क्यों न हो जाय, चाहे असंभव संभव बन जाय, पर हम अपनी

टेक न छोड़ेंगे। हममें जो कमज़ोर हैं, उन्हे हम घर-घर जाकर समझायेंगे और कैसी भी हालत में पीछे न हटने देंगे। आप अपनी इस भीषण प्रतिज्ञा को छोड़ दीजिये।' यह प्रभाव लोगों की इन बातों तक ही सीमित न रहा। दुपहर होते-होते तो दल के दल मज़दूर आश्रम में आने लगे और गांधीजी से दीन व करुण शब्दों में प्रतिज्ञा छोड़ देने की प्रार्थना करने लगे। कुछ मज़दूर उत्साहपूर्वक मज़दूरी माँगने लगे; कुछ मुफ्त में मज़दूरी करके अपनी कमाई के पैसे उन मज़दूरों को देने के लिए तैयार हो गये, जो ख़ुद मज़दूरी नहीं करते थे, या करने में असमर्थ थे। आश्रम के लिए भी वह एक बड़ा धन्य दिवस था। मज़दूरों का उत्साह बढ़ाने के लिए, श्री० शंकरलाल बैंकर जैसे, जिन्होंने कभी धूप तक बर्दाश्त नहीं की थी, ईंट, रेत, वग़ैरा ढोने लगे थे। आज तो अनसूयाबहन भी इसमें शामिल हुईं। आश्रम के भाई-बहनों के सिवा वहाँ के बालक भी इस काम में बड़ी उमंग से हाथ बँटाने लगे। इस सबका कुछ अवर्णनीय प्रभाव पड़ा। मज़दूरों के उत्साह और उमंग का पार न रहा। जो लोग पहले भिन्नाते हुए और झीखते हुए काम पर आते थे, जो बदन चुरा कर सुस्ती से काम करते थे, वे लोग भी पहले से दुगना काम दुगने ज़ोर से करने लगे।

एक ओर जब यह सब हो रहा था, तभी दूसरी ओर, गांधीजी के सामने सैकड़ों मज़दूर गांधीजी को उलाहना देनेवाले जुगलदास की चाल के मज़दूरों को लेकर अपना पश्चात्ताप प्रकट करने और गांधीजी से उनकी प्रतिज्ञा छुड़वाने का प्रयत्न कर रहे थे। 'हड़ताल महीनों चली, तो भी हम पीछे न हटेंगे। मिलों को छोड़कर जो मिल जायगा, वही धन्धा करेंगे। महेनत-मज़दूरी

से अपना गुज़र करेंगे, भीख माँगेंगे, लेकिन प्रतिज्ञा न तोड़ेंगे।' सब इसी आशय का विश्वास दिलाने लगे। कुछ लोगों की भावनायें तो इतनी उत्तेजित हो उठी थीं कि उन्होंने गांधीजी से कह दिया कि अगर अनसूयाबहन, जिन्होंने उसी सभा में निराहार रहने की प्रतिज्ञा की थी, अपनी प्रतिज्ञा को वापस न लौटा लेंगी, तो वे कुछ अनहोनी-सी कर डालेंगे। एक भाई तो अपनी कमर में खंजर खोंसकर लाये थे। उन्होंने आत्महत्या की धमकी दी। यह मीठा और करुण कलह इतनी देर तक चला कि आख़िर अनसूयाबहन को आहार लेना स्वीकार करना पड़ा।

शाम को पाँच बजे मज़दूरों की सभा रक्खी गई थी। आज की पत्रिका का विषय था: 'मज़दूरी'। मज़दूरी के महत्त्व और उसकी पवित्रता के बारे में इतनी सरल और दिल को हिलानेवाली गुजराती में यह पहली ही चीज़ लिखी गई थी। 'मज़दूर का मज़दूरी न करना, शकर का अपनी मिठास छोड़ देना है। यदि समुद्र अपना खारीपन छोड़ दे, तो हमें नमक कैसे मिले? मज़दूर मज़दूरी छोड़ दे, तो यह दुनिया रसातल में चली जाय। शीरीं के लिए फरहाद ने पत्थर तोड़े थे; मज़दूरों की शीरीं उनकी प्रतिज्ञा है; उसके लिए मज़दूर पत्थर क्यों न तोड़े? सत्य के लिए हरिश्चन्द्र बिके। अपने सत्य की रक्षा के लिए मज़दूर मज़दूरी के तमाम कष्टों को, यदि वे कष्ट हैं, क्यों न सहें? अपनी आन के लिए हज़रत इमाम हसन और हुसैन ने अज़हद तकलीफ़ें उठाईं; हम अपनी आन के लिए मरने को क्यों न तैयार रहें?'

उस दिन की शामवाली सभा में गांधीजी ने मज़दूरों को इन उद्गारों का महत्त्व समझाने के साथ ही नई उत्पन्न परिस्थिति

पर प्रकाश डालने के लिए एक बहुत ही सुन्दर भाषण किया था। उस भाषण के कुछ महत्त्वपूर्ण अंश नीचे दिये जाते हैं:

'आप लोगों को पता चला होगा कि आज सुबह की सभा में क्या-क्या काम हुआ। कइयों को बड़ा सदमा-सा पहुँचा; कई रो पड़े! मैं नहीं समझता कि सुबह जो कुछ हुआ वह ग़लत हुआ या शरमाने-जैसा हुआ। जुगलदास की चालवालों ने जो टीका की, उससे मुझे गुस्सा नहीं आया, उलटे उससे तो मुझे, अथवा जिन्हें हिन्दुस्तान की कुछ सेवा करनी है उनको, बहुत कुछ समझ लेना है। मैं मानता हूँ कि अगर हमारी तपश्चर्या, यानी ज्ञानपूर्वक दुःख सहने की शक्ति, सच्ची है, तो वह कभी निष्फल हो नहीं सकती—उसके सुफल फलकर ही रहेंगे। मैंने आपको एक ही सलाह दी। आपने उसके अनुसार प्रतिज्ञा ली। इस युग में प्रतिज्ञा का मूल्य, टेक की क़ीमत, नष्ट हो गई है। लोग जब चाहते हैं और जिस तरह चाहते हैं, ली हुई प्रतिज्ञा तोड़ देते हैं, और इस तरह प्रतिज्ञा का पानी उतार देने से मुझे दुःख होता है। साधारण आदमी को बाँधने के लिए प्रतिज्ञा से बढ़कर दूसरी कोई डोर नहीं। दुनिया में हम जिस परमात्मा को मानते हैं, उसीको अपना साक्षी बनाकर जब हम किसी काम को करने के लिए तैयार होते हैं, तो वही हमारी प्रतिज्ञा हो जाती है। जो उन्नत हैं वे बिना प्रतिज्ञा के भी अपना काम चला सकते हैं। लेकिन हमारे समान अवनत या पिछड़े हुए लोग वैसा नहीं कर सकते। हम लोगों के लिए, जो जीवन में हज़ारों बार गिरते हैं, इस तरह की प्रतिज्ञाओं के बिना ऊपर चढ़ना असंभव है। आप मंज़ूर करेंगे कि अगर हमने प्रतिज्ञा न ली होती, और रात-दिन उसका रटन न किया होता, तो हममें से बहुतेरे कभी के

फिसल चुके होते । आप लोगों ने ही मुझसे कहा है कि इससे पहले इतनी शक्ति के साथ चलनेवाली कोई हड़ताल आपने नहीं देखी । फिसलने या हारने का कारण पेट की आग है । मेरी सलाह है कि आप लोगों को पेट की इस आँच को सहकर भी अपनी टेक पर क़ायम रहना चाहिए । इसके साथ ही मेरी और मेरे साथ काम करनेवाले भाई-बहनों की भी यह प्रतिज्ञा है कि किसी भी दशा में हम आपको भूखों न मरने देंगे । अगर हम अपने सामने आपको भूखों मरने दें, तो आपका फिसलना—पीछे हटना—स्वाभाविक है । इस तरह की दुहेरी सलाह के साथ एक तीसरी चीज़ और रह जाती है । वह यह कि हम आपको भूखों न मारें, बल्कि आपसे भीख मँगवायें । अगर हम ऐसा करते हैं, तो भगवान के सामने गुनहगार ठहरते हैं, चोर साबित होते है । लेकिन यह मैं आपको किस तरह समझाऊँ कि आप मज़दूरी करके अपना पेट भरिये ! मैं मज़दूरी कर सकता हूँ; मैंने मज़दूरी की है; आज भी करना चाहता हूँ; पर मुझे मौक़ा नहीं मिलता। मुझे अभी बहुत कुछ करना है, इसलिए सिर्फ़ कसरत के तौर पर थोड़ी मज़दूरी कर लेता हूँ । अगर आप मुझसे यह कहें कि हमने तो कर्घे की मज़दूरी की है; दूसरी मज़दूरी हम नहीं कर सकते, तो क्या यह कहना आपको शोभेगा ? हिन्दुस्तान में इस तरह का बहम घुस गया है । उसूलन् यह ठीक है कि एक आदमी को एक ही काम करना चाहिए, लेकिन जब इसका उपयोग बचाव के तौर पर किया जाता है, तो बात बिगड़ जाती है । मैंने इस मसले पर बहुत सोचा है । जब मुझ पर दो एक सीधे हमले हुए तो मैंने सोचा कि अगर मुझे आप लोगों से आपका अपना धर्म पलवाना हो, प्रतिज्ञा और मज़दूरी की क़ीमत

आपको समझानी हो, तो मुझे आपके सामने इसका कोई जीता-जागता सबूत पेश करना चाहिए। आपके साथ हम लोग कोई खिलवाड़ नहीं कर रहे हैं; कोई नाटक नहीं दिखा रहे हैं। जो बातें हम आपसे कहते हैं, उन्हें हम स्वयं भी पालने को तैयार हैं, यह मैं आपको कैसे समझाऊँ? मैं कोई परमात्मा या ख़ुदा नहीं हूँ कि किसी दूसरे तरीक़े से यह सब आपको दिखा दूँ। मैं तो आपके सामने कुछ ऐसा कर दिखाना चाहता हूँ, जिससे आप भी समझ जायँ कि इन्सान के साथ तो साफ़-साफ़ बातें ही करनी होंगी, नाटक-चेटक से काम नहीं चलेगा। 'दूसरी कोई लालच या धमकी देकर भी प्रतिज्ञा का पालन नहीं करवाया जा सकता। लालच तो धन-दौलत की ही दी जा सकती है। जिसे अपना धरम प्यारा है, टेक प्यारी है, देश प्यारा है, वही अपनी टेक पर क़ायम रह सकता है, इसे आप समझ सकते हैं।'

ऊपर के अवतरण में गांधीजी ने 'प्रतिज्ञा' का तात्त्विक रहस्य और अपनी प्रतिज्ञा का उद्देश्य बड़े सरल ढंग से और पर्याप्त विस्तार के साथ समझाया है, अतएव विस्तारभय का जोखिम उठाकर भी वह यहाँ अक्षरशः दिया गया है। इस प्रतिज्ञा के कारण जो स्थिति उत्पन्न हुई, वह इतनी तो जिज्ञासा, टीका और चर्चा का विषय बनी थी कि उसके संबंध में कुछ कहने से पहले भिन्न-भिन्न अवसरों पर स्वयं गांधीजी ने इस सम्बन्ध में जो कुछ कहा था, उसका उल्लेख कर देना ज़रूरी है। उनके भाषण के कुछ और वाक्य यहाँ देने लायक़ हैं। भाषण के सिलसिले में एक जगह उन्होंने कहा था: 'मुझे इस तरह की प्रतिज्ञायें लेने की आदत है, लेकिन इस डर से कि कहीं लोग उनकी झूठी नक़ल न करें, मैं प्रतिज्ञा करना ही छोड़ देता हूँ। **किन्तु मुझे तो**

करोड़ों मज़दूरों के सम्पर्क में आना है, अतएव उसके लिए मुझे अपनी आत्मा के साथ ख़ुलासा कर लेने की ज़रूरत रहती है। मैं आपको यह दिखाना चाहता था कि आप लोगों के साथ मुझे खिलवाड़ नहीं करना है।' आगे इसी सिलसिले में फिर कहा था: '**मैंने आपको अपने कार्य द्वारा यह दिखाने की कोशिश की है कि प्रतिज्ञा का जो मूल्य मैं आँकता हूँ, वही आप भी आँकें।** आपने एक काम कर दिखाया है। आपके दिल में यह ख़याल आ सकता था: 'हमें आपकी प्रतिज्ञा से क्या संबंध? हम बाहर नहीं रहेंगे। हम तो काम पर जायँगे।' लेकिन आपने यह नहीं सोचा। आपने हमारी सेवा को पसंद किया। और मैंने आपकी बहुत क़ीमत आँकी। आपके साथ मरना मुझे सुन्दर लगा; आपके साथ तरना भी मुझे सुन्दर प्रतीत हुआ।'

इस पहलू पर इतना सोच लेने के बाद अब हम देखें कि प्रतिज्ञा के संबंध में लोकचर्चा किस तरह की हुई। उन दिन तक हिन्दुस्तान ने अपने लोकनेताओं को लोकसेवा के लिए उपवास की प्रतिज्ञा के प्रयोग करते देखा-सुना नहीं था। लेकिन गांधीजी का तो यह एक सिद्धान्त ही है कि मनुष्य के अधःपतन के समय की गई भीषण प्रतिज्ञायें उसे अधःपात से बचा सकती हैं। दक्षिण आफ्रिका में गांधीजी अपने इस सिद्धान्त पर कई बार अमल भी कर चुके थे। यहांवालों को यह एक नया ही प्रयोग मालूम हुआ। जो लोग मानते थे कि गांधीजी कभी विवेक न छोड़ेंगे, उनकी जिज्ञासा सतेज हुई। जो इसमें विश्वास नहीं रखते थे, वे सोचने लगे कि गांधीजी ने घबराकर मिलमालिकों को दबाने के लिए यह प्रपंच रचा है। प्रोफेसर आनंदशंकर ध्रुव ने पहले ही दिन आकर

पूछा था : "मैं जानता हूँ कि आपने जो उग्र निश्चय किया है, सो अपने समूचे जीवन में ओतप्रोत किसी सूत्र के अनुसार ही किया होगा। लेकिन मैं यह जानना चाहता हूँ कि यह किसलिए किया गया है।" इसको लेकर प्रतिज्ञा के आध्यात्मिक रहस्य पर जो चर्चा चली, यहाँ उसके विवरण में उतरने का विचार नहीं है।

इस सम्बन्ध में यही कहना काफ़ी होगा कि इस सारी चर्चा के दरम्यान प्रो० आनन्दशंकर का खयाल यह था, कि इस प्रकार की प्रतिज्ञा से कुछ समय के लिए मनुष्य का बाह्य आचरण चाहे बदल जाय, लेकिन मनुष्य का हृदय नहीं बदल सकता। गांधीजी उन्हें समझाने की ख़ूब कोशिश करते थे, किन्तु उससे प्रो० आनन्दशंकर को सन्तोष होता नज़र नहीं आता था। यों, मिल-मज़दूरों का जो सवाल अब तक एक संकुचित सवाल था, अब व्यापक बन गया। गांधीजी की भीषण प्रतिज्ञा के कारण नगर के तटस्थ सज्जनों को भी अपनी तटस्थता का त्याग करना पड़ा। इसी सिलसिले में धीरे-धीरे प्रो० आनन्दशंकर के साथ गांधीजी का सम्बन्ध बढ़ना शुरू हुआ। बाहर के — हिन्दुस्तान के विभिन्न स्थानों के — लोक-नेता भी बहुत चिन्तित हो उठे, और सब यही मनाने लगे कि किसी तरह इस झगड़े का निपटारा हो जाय तो अच्छा।

हम नहीं कह सकते कि मिलमालिकों पर इसका कोई असर ही न हुआ हो। अलबत्ता, उनमें से कइयों का यह ख़याल ज़रूर था कि गांधीजी ने मालिकों को दबाने के लिए ही यह ढोंग या प्रपंच रचा है। लेकिन श्री० अम्बालालभाई को, जिन्होंने अब तक अपने कठोर आग्रह के कारण अपने मालिक भाइयों को

दृढ़ रक्खा था, इस घटना से घनी पीड़ा हुई । वे घण्टों गांधीजी के पास आकर बैठने लगे, और उनसे प्रतिज्ञा छोड़ देने की प्रार्थना करने लगे । तीसरे दिन तो उनके साथ दूसरे कई मिल-मालिक भी आये । सबका यह आग्रह तो था कि गांधीजी अपना उपवास छोड़ दें, लेकिन मज़दूरों की प्रतिज्ञा की रक्षा के बारे में वे उतने आग्रही न थे । गांधीजी को भी यह ख़याल तो बराबर था कि प्रतिज्ञा का अप्रत्यक्ष प्रभाव मिलमालिकों पर दबाव डालेगा । इसलिए इस सम्बन्ध में वे मालिकों को बार-बार समझाने लगे । अपने प्रत्येक भाषण में उन्होंने बार-बार यह बताया कि मालिकों पर पड़नेवाले दबाव के कारण प्रतिज्ञा कुछ दूषित ज़रूर होती है, तथापि उसका मूल उद्देश्य तो मज़दूरों को यह समझाना है कि उनकी प्रतिज्ञा का कितना महत्त्व है और क्यों उन्हें अपनी प्रतिज्ञा पर क़ायम रहना चाहिए ।

कई मिल-मालिक गांधीजी से कहते : 'इस बार **आपके ख़ातिर** हम मज़दूरों को ३५ प्रतिशत दे देंगे ।' इस पर गांधीजी साफ़ इन्कार करते हुए कहते : 'मुझ पर दया करके नहीं, बल्कि मज़दूरों की प्रतिज्ञा का आदर करके, उनके साथ न्याय करने के लिए, उन्हें ३५ प्रतिशत दीजिये ।' उपवास की प्रतिज्ञा के बाद तीसरे दिन शाम को उन्होंने कहा था : "मिल-मालिकों ने आकर मुझसे कहा : 'आपके ख़ातिर हम ३५ प्रतिशत दे देंगे ।' लेकिन उनका मेरे ख़ातिर ३५ प्रतिशत देना मुझे तलवार की धार की तरह खटकता है । मैं इस चीज़ को जानता था, फिर भी मैं अपनी प्रतिज्ञा नहीं छोड़ सका, क्योंकि मैंने दूसरी तरफ़ यह सोचा कि १०,००० आदमियों का अपनी प्रतिज्ञा से मुँह मोड़ना एक ईश्वरी प्रकोप ही होगा । मेरे

लिए तो यह बहुत ही शरम की बात है कि **मेरे ख़ातिर** आपको ३५ प्रतिशत मिले।"

यों चर्चायें होती रहती थीं और उपवास के दिन बढ़ते जाते थे। उपवास से गांधीजी के शरीर में शिथिलता उत्पन्न होने के बदले, एक प्रकार की स्फूर्ति-सी बढ़ रही थी। उन्हें समझाने और उनके उपवास की प्रतिज्ञा छुड़वाने की कोशिशें चारों ओर से बराबर ज़ारी थीं। ऊपर कहा जा चुका है कि श्री० अंबालालभाई को इस प्रतिज्ञा से बड़ा आघात पहुँचा था, अतएव गांधीजी को समझाने की उनकी कोशिशें भी हद दर्जे की थीं। अपने पक्ष के विषय में उनकी मुख्य दलील यह थी: 'मज़दूर इस प्रकार बार-बार, मनमाने ढंग से, हमारा विरोध करें, और इसमें उनको बाहर से प्रोत्साहन भी मिले, तो इस चीज़ को हम सह नहीं सकते। अगर यही सिलसिला ज़ारी रहा तो मज़दूरों में विनय नाम की कोई चीज़ रह न जायगी। इस तरह तो हमारे और मज़दूरों के बीच जब-जब झगड़ा होगा, तब-तब हमेशा हमें किसी तीसरे पक्ष को पंच बनाना पड़ेगा, जो हमारे लिए शोभास्पद नहीं होगा। उससे हमारी प्रतिष्ठा नहीं रहेगी। हां, अगर आप भविष्य में हमारे और मज़दूरों के सवालों को हमीं तक रहने दें और ख़ुद हमेशा के लिए उनसे हाथ धो लें, तो हम तुरन्त ३५ प्रतिशत दे दें।' यह कोई मामूली माँग न थी। अन्याय, अनीति और अत्याचार का आन्तरिक प्रेरणा से विरोध करनेवाले गांधीजी यों मज़दूरों की सेवा के दरवाज़ों को अपने हाथों हमेशा के लिए बंद कर दें, यह कभी हो नहीं सकता था। अतएव सेवावृत्ति को हमेशा के लिए ताक़ पर रखने की मंज़ूरी देकर मज़दूरों के लिए ३५ प्रतिशत प्राप्त करने और उपवास छोड़ देने की बात जम

न सकी। इसके बाद समझौते की बातचीत ने दूसरा रूप धारण किया। मालिकों की ओर से यह दलील पेश की गई: 'किसी भी तरह मालिकों का आग्रह भी सिद्धान्त के रूप में माना जाना चाहिए। आप ही की तरह मिलमालिकों की भी अपनी प्रतिज्ञा है।' गांधीजी ने नीचे लिखे प्रतिप्रश्न द्वारा मालिकों की इस दलील का थोथापन सिद्ध कर दिखाया: "क्या कोई राजा यह प्रतिज्ञा कर सकता है: 'मैं अपनी प्रजा पर भारी-भारी कर लादूँगा, और उसकी दाद-फ़रियाद कभी न सुनकर उसे हैरान करूँगा'?" फिर भी इस सारे ऊहापोह के बीच गांधीजी के मन से यह बात दूर नहीं हो रही थी कि उपवास के कारण मालिकों पर दबाव पड़ता है। अतएव मालिकों की प्रतिज्ञा को सुरक्षित रखने के लिए वे कृत्रिम उपायों से काम लेने को राज़ी हो गये। लड़ाई छिड़ने से पहले दोनों पक्षों ने पंच के जिस उसूल को माना था, वह गांधीजी को भी मंज़ूर था। इसलिए गांधीजी ने यह मान लिया कि 'अगर मज़दूरों की प्रतिज्ञा के शब्दों की रक्षा हो जाय, तो और बातों में पंच जो कहेंगे उसे मज़दूर कबूल रक्खेंगे।' इससे समझौते का रास्ता बहुत कुछ खुल गया। फलतः मज़दूरों की प्रतिज्ञा को निभाने के लिए पहले दिन ३५ प्रतिशत भत्ता देने, और मालिकों की प्रतिज्ञा को निभाने की गरज़ से दूसरे दिन २० प्रतिशत भत्ता देने, एवं तीसरे दिन मज़दूरों और मालिकों द्वारा नियुक्त पंच जो फ़ैसला कर दें, उतने प्रतिशत देने का एक प्रस्ताव समझौते के आधाररूप में पेश हुआ। लेकिन बाद में दोनों पक्षों ने यह माना कि पंच न तो तीसरे दिन अपना फ़ैसला दे सकेंगे, और न ही अमुक प्रतिशत दिला सकेंगे, अतएव उन्हें जाँच-पड़ताल के लिए पूरा समय मिलना चाहिए। यह भी तय हुआ कि इसके लिए

उन्हें तीन महीनों की मुद्दत मिलनी चाहिए। अब सवाल यह उठा कि पंच का फ़ैसला होने तक मज़दूरों को भत्ता किस हिसाब से दिया जाय? इस सवाल को दोनों पक्षों ने नरमी-गरमी से हल किया। मज़दूर दल ने अपनी माँग को ७॥ टका घटाया, मालिकों ने ७॥ टका बढ़ाना कबूल किया और यह तय हुआ कि बीच के समय में, यानी पंचों का फ़ैसला मिलने तक, मज़दूरों को २७॥ टका भत्ता दिया जाय। प्रो० आनन्दशंकर ध्रुव को दोनों पक्षों ने एकमत से पंच नियुक्त किया। चूँकि उपवास की प्रतिज्ञा के दिन से ही प्रो० आनन्दशंकर ने इस झगड़े में सक्रिय रस लिया था, इसमें अपनी अमली दिलचस्पी दिखाई थी, इसलिए सहज ही पंच का दायित्त्व भी उन पर आ पड़ा और उन्होंने उसे सहर्ष स्वीकार किया। अब तो कुछ करने को न रहा था। दूसरे दिन सबेरे ही मज़दूरों को पता चल गया कि झगड़ा मिट चुका है, इसलिए वे हज़ारों की तादाद में शाहपुर दरवाज़े के पास पेड़ के नीचे आकर बैठ गये थे, और यह जानने को उत्सुक व आतुर थे कि फ़ैसला क्या हुआ और किस तरह हुआ। आज की सभा में कमिश्नर साहब को भी निमंत्रित किया गया था, और उन्होंने उस निमंत्रण को आग्रहपूर्वक स्वीकारा था। शहर के अन्य अनेक प्रतिष्ठित स्त्री-पुरुष भी सभा में उपस्थित थे। ग्यारह बजे गांधीजी आये और उन्होंने समझौते की हक़ीक़त मज़दूरों के सामने पेश की। यह हक़ीक़त गांधीजी के शब्दों में ही नीचे दी जाती है: 'जिस समझौते की बात मैं आपके सामने पेश करनेवाला हूँ, उसमें सिवा इसके कि मज़दूरों की सिर्फ़ टेक क़ायम रह जाती है, और कोई बात नहीं है। मैंने मालिकों को अपनी शक्तिभर समझाया; हमेशा के लिए ३५ प्रतिशत देने को कहा। परन्तु यह बात उन्हें

बहुत भारी मालूम हुई । अब मैं आपसे एक बात कह दूँ । यह कि हमारी माँग एकतर्फ़ा थी । लड़ाई से पहले हमने मालिकों का पक्ष जानने की माँग पेश की थी, परन्तु तब उन्होंने उसे माना नहीं था । अब वे पंच के प्रस्ताव को मंज़ूर करते हैं । मैं भी कहता हूँ कि यह झगड़ा पंच के सामने भले जाय । पंच से मैं ३५ प्रतिशत ले सकूँगा । अगर पंच कुछ कम देने का निर्णय देंगे, तो मैं मान लूँगा कि हमने माँगने में ही भूल की थी । मालिकों ने मुझसे कहा कि जैसी मेरी प्रतिज्ञा है, वैसी उनकी भी प्रतिज्ञा है । मैंने उन्हें कहा है कि ऐसी प्रतिज्ञा करने का उन्हें अधिकार नहीं । लेकिन उनका आग्रह रहा कि उनकी प्रतिज्ञा भी सच है । मैंने दोनों की प्रतिज्ञा पर विचार किया । मेरे उपवास मार्ग में बाधक बने । मैं इनसे यह तो नहीं कह सकता था कि मुझे मुँहमाँगा दोगे, तभी मैं उपवास तोड़ूँगा; यह तो नामर्दी की बात होती । अतएव मैंने मान लिया कि फिलहाल तो दोनों पक्षों की प्रतिज्ञायें रहें, और बाद में पंच जो फ़ैसला दे दें, सो सही । अतः थोड़े में हमारे समझौते का सार यह है कि पहले दिन हमें अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार ३५ प्रतिशत भत्ता मिले, दूसरे दिन मालिकों की प्रतिज्ञा के अनुसार २० प्रतिशत मिले, और तीसरे दिन से पंच का फ़ैसला होने तक २७॥ प्रतिशत मिले । बाद में पंच ३५ प्रतिशत का फ़ैसला दें, तो मालिक ७॥ टका हमें ज़्यादा दें और २७॥ से कम का फ़ैसला दें तो उतनी रक़म हम मालिकों को लौटा दें ।' मज़दूरों ने इस घोषणा का बड़े हर्ष के साथ स्वागत किया । लेकिन उन्हें केवल हर्ष-समाचार सुनाना ही काफ़ी न था । दो बातें नसीहत की भी कहनी थीं । गांधीजी ने इस मौक़े पर वे बातें भी कह दीं : 'हमने आपस में मिलकर

सारी मसलहत की है; अब हमसे बिना मिले आप कोई प्रतिज्ञा न कर बैठना। जिसे अनुभव नहीं, जिसने कुछ किया-धरा नहीं, वह प्रतिज्ञा का भी अधिकारी नहीं। बीस वर्षों के अनुभव के बाद मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि प्रतिज्ञा लेने का अधिकार मुझे है। मैंने देखा है कि आप अभी प्रतिज्ञा के लायक़ नहीं बने। अतएव अपने बुज़ुर्गों से पूछे बिना प्रतिज्ञा न लेना। प्रतिज्ञा लेनी ही पड़े, तो हमसे आकर मिलना। जब ऐसा समय आयेगा, तो विश्वास रखिये कि आज की तरह तब भी हम आपके लिए मरने को तैयार रहेंगे। लेकिन याद रखिये कि जो प्रतिज्ञा आप हमारे सामने लेंगे, उसीके लिए हम आपकी मदद कर सकेंगे। भूल से की जानेवाली प्रतिज्ञा तोड़ी भी जा सकती है। आपको तो अभी यह सीखना है कि प्रतिज्ञा कब और किस तरह लेनी चाहिए।'

इसके बाद गांधीजी ने बताया कि इस समझौते की ख़ुशी में मिलमालिक मज़दूरों में मिठाई बाँटना चाहते हैं। उन्होंने मज़दूरों को समझाया कि वे मालिकों की इस माँग को सहर्ष मंज़ूर करें। मज़दूरों ने इस प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार कर लिया। यह दिखाने को कि समझौते की शर्तें सबको मंज़ूर हैं, मज़दूरों में से अलग-अलग खातों के अगुआ मज़दूर मंच पर आये और अपने संक्षिप्त एवं सामयिक भाषणों द्वारा उन्होंने अपना हर्ष और अपनी कृतज्ञता प्रकट की। इसके बाद मज़दूरों और मित्रों के आग्रह से गांधीजी ने वहीं पारणा किया। उत्तरी विभाग के तत्कालीन कमिश्नर मिस्टर प्रैट इस अवसर पर अपने हर्ष को छिपा न सके। वे उठे और दोनों दलों का अभिनंदन करते हुए उन्होंने एक संक्षिप्त भाषण किया: 'आपके बीच समझौता हो

रहा है, यह देखकर मुझे बड़ी ख़ुशी होती है। मुझे पूरा विश्वास है कि जबतक आप मिस्टर गांधी की सलाह लेते रहेंगे और उनका कहा करेंगे, आपका भला ही होगा और आपको इन्साफ़ ही मिलेगा। आपको याद रखना चाहिए कि आपके लिए मिस्टर गांधी ने और उनके सहायक भाई-बहनों ने बहुत कष्ट उठाये हैं, बड़ी मुसीबतें झेली हैं, और आपके साथ प्रेम व दया का व्यवहार किया है। मुझे आशा है, कि यह बात आपको हमेशा याद रहेगी।'*

उसी दिन शाम को श्री० अंबालालभाई के बंगले के सामने वाले विशाल आँगन में सभी मज़दूर इकट्ठा हुए और मिलमालिकों ने उन्हें मिठाई बाँटी। इस अवसर पर गांधीजी ने और श्री० अंबालालभाई ने जो विचार प्रकट किये थे, वे इस बात को भली-भाँति सिद्ध करनेवाले थे कि मालिकों और मज़दूरों के बीच की यह लड़ाई कितने सीधे-सच्चे ढंग से लड़ी गई थी और अन्त में कितनी मिठास के साथ दोनों दलों में समझौता हुआ था। यहाँ श्री० अंबालालभाई के दो-चार वाक्य ही पर्याप्त होंगे: 'आज २२ दिन के बाद मज़दूरों ने बुनाई विभाग को खोलने और

---

*इस संबंध की एक उल्लेखनीय बात यह है कि जिन दिनों खेड़ा सत्याग्रह की लड़ाई अपने पूरे ज़ोर पर थी, तब इन्हीं कमिश्नर साहब ने रोषवश ऐसी-ऐसी बातें कही थीं, जो इन बातों के बिलकुल खिलाफ़ पड़ती थीं—अत्यन्त अशोभन थीं; लेकिन चूँकि गांधीजी उनका सुन्दर जवाब दे चुके हैं, इसलिए यहाँ उसकी तफ़सील में उतरना ज़रूरी नहीं मालूम होता। हाँ, इससे यह ज़रूर साबित होता है कि अच्छे से अच्छे अधिकारी भी प्रतिष्ठा के भूलभरे विचारों के कारण विवेक का परित्याग करने में नहीं चूकते। —ले०

काम पर हाज़िर होने का जो निश्चय किया है, उससे मुझे बहुत आनन्द हो रहा है । मैं अधिक कुछ कहना नहीं चाहता, फिर भी इतना तो कहूँगा ही कि अगर कारीगर गांधीजी को पूज्य समझते हैं, तो मिलमालिक भी उनको किसी प्रकार कम पूज्य नहीं मानते; बल्कि अधिक पूज्य ही मानते हैं । मैं चाहता हूँ कि हमारे बीच परस्पर हमेशा प्रेम बना रहे ।'

गांधीजी के विचार भी यहाँ देने लायक़ हैं: 'मैं मानता हूँ कि जैसे-जैसे दिन बीतते जायँगे, वैसे-वैसे अहमदाबाद तो ठीक, सारा हिन्दुस्तान इन २२ दिनों की लड़ाई के लिए गर्व का अनुभव करेगा, और हिन्दुस्तानवाले यह मानेंगे कि जहाँ इस तरह की लड़ाई चल सकती है, वहाँ आशा की बहुत कुछ गुंजाइश है । इस लड़ाई में बैर-भाव को कोई स्थान नहीं रहा है । मैंने ऐसी लड़ाई का अभीतक अनुभव नहीं किया था । वैसे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रीति से कई लड़ाइयों का अनुभव मुझे है, लेकिन उनमें से एक भी ऐसी नहीं याद पड़ती कि जिसमें दुश्मनी या कडुवाहट इतनी कम रही हो । आशा है, जैसी शांति आपने लड़ाई के दिनों में रक्खी थी, वैसी आप हमेशा बनाये रक्खेंगे ।' इसी कारण जब कुछ मज़दूरों ने यह आग्रह किया कि समझौते की शर्तों में एक शर्त यह भी होनी चाहिए कि मिलमालिक लॉक आउट के समय की तनख़्वाह उन्हें दें, तो गांधीजी ने फ़ौरन ही उनको समझाकर चुप कर दिया । समझौते संबन्धी पत्रिका में तो गांधीजी ने इस आग्रह को ही नहीं, बल्कि इसके विचार-मात्र को हेय माना है । 'लॉक आउट के समय की तनख्वाह माँगना, मालिकों के पैसे से लड़ने के समान है । मज़दूरों के लिए इसका विचार भी शर्मनाक है । लड़वैये अपनी ताक़त पर ही लड़ सकते हैं । फिर मालिक मज़दूरों को

तनख्वाह दे चुके हैं । इसलिए अब तो यह भी कहा जा सकता है कि मज़दूर नये सिरे से नौकरी पर जाते हैं । इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए मज़दूरों को लॉक आउट के समय की तनख्वाह लेने का विचार छोड़ देना चाहिए ।' *

उस दिन शाम को गांधीजी का जो भाषण हुआ उसके कुछ उद्गार तो मिलमालिकों के दिलों को हिलानेवाले और उन्हें जीवन पर्यंत याद रह जानेवाले थे : 'मैं आपकी (मज़दूरों की) ओर से मालिकों से क्षमा मांगता हूँ । मैंने उन्हें बहुत दुःख दिया है । मेरी प्रतिज्ञा तो आपके लिए थी; लेकिन दुनिया में हमेशा हर चीज़ के दो पहलू रहते आये हैं; इसी कारण मेरी प्रतिज्ञा का प्रभाव मालिकों पर भी पड़ा है । मैं दीनतापूर्वक उनसे क्षमा चाहता हूँ । **मैं जितना मज़दूरों का सेवक हूँ उतना ही आपका (मालिकों का) सेवक भी हूँ । मेरी प्रार्थना केवल यही है कि आप मेरी सेवाओं का ठीक-ठीक उपयोग कीजियेगा ।'**

दूसरे दिन गांधीजी के प्रति और उनके साथ इस लड़ाई में भाग लेनेवाले भाई-बहनों के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करने के लिए मज़दूरों ने जो हर्ष-सभायें और हर्ष-यात्रायें कीं उनका तो यहाँ उल्लेख-मात्र किया जा सकता है । जिन्होंने उन दृश्यों को देखा है, वे कहते हैं कि अहमदाबाद के लिए तो वे अद्भुत थे, अपूर्व थे ।

---

* मिलों के खुलने पर इस तनख्वाह के संबंध में कुछ छुटपुट झगड़े हुए थे; पर इन झगड़ों के लिए मज़दूर जितने ज़िम्मेदार थे, उतने ही मिलमालिक भी ज़िम्मेदार थे ।

लड़ाई के दरम्यान गांधीजी ने अनशन की जो प्रतिज्ञा की थी, और लड़ाई के बाद जो समझौता हुआ, उस पर उन दिनों अनेक प्रकार की टीका-टिप्पणियाँ हुईं। इन टीकाओं के औचित्य अथवा अनौचित्य पर यहाँ कुछ लिखने का विचार नहीं है। स्वयं गांधीजी ने इन दोनों बाबतों में अपनी आत्मा की कैसी कड़ी परीक्षा की है, उसका थोड़ा परिचय इन टीकाकारों के लिए यहाँ देना अप्रासंगिक न होगा। समझौते के एक दिन पहले समझौते की शर्तों के बारे में श्री० अंबालालभाई को अपने एक पत्र में उन्होंने लिखा था: "मुझे जिमाने की इच्छा के बदले आप अपनी न्याय-वृत्ति का अधिक ख़याल रखियेगा। मेरा उपवास मेरे लिए तो अतिशय आनंददायक है। अतएव मित्रों को उससे दुखी होने की कोई वजह मैं नहीं देखता। मज़दूरों को जो न्यायपूर्वक मिलेगा, वही अच्छी तरह हज़म होगा — अधिक निभेगा। ३५ प्रतिशत, २० प्रतिशत और पंच — ऐसी **मूर्खता** अपने **धर्म और गर्व** की रक्षा के लिए हम कह सकते हैं, सह सकते हैं। मज़दूर इसे प्रपंच मानेंगे, क्योंकि वे सरल हैं। इसलिए मुझे अधिक अच्छा तो तब मालूम होगा, जब दूसरा कोई बेहतर रास्ता मिले। आप ऊपर की शर्तें मंज़ूर कराना चाहेंगे, तो मैं उन्हें भी मंज़ूर करूँगा, पर जल्दबाज़ी न होने दूँगा। पंच मिलकर तुरन्त ही फ़ैसला कर डालें और उन्हीं भावों का हम ऐलान करें; यानी पहले दिन ३५, दूसरे दिन २० और तीसरे दिन पंच-फ़ैसले के मुताबिक़। इसमें भी **मूर्खता तो है, लेकिन चौकसाई** भी है। तीसरे दिन की रक़म का ऐलान आज ही करना होगा।"

समझौते के दिन सुबह की सभा में बोलते हुए इसी संबंध में उन्होंने कहा था: "आपके लिए मैं जो कुछ लाया हूँ, **वह**

हमारी प्रतिज्ञा के अक्षरों की पूर्ति के लिए काफ़ी होगा, आत्मा के लिए नहीं। आत्मावाले अभी हम हैं नहीं, इसलिए अक्षर से ही हमें संतोष करना होगा।" लेकिन इससे भी अधिक गहरे और कठोर आत्मनिरीक्षणवाले कुछ उद्‌गार तो अभी बाक़ी हैं। उपवास संबंधी कुछ उद्‌गार ऊपर दिये जा चुके हैं। नीचे के कुछ और उद्‌गार उपवास की प्रतिज्ञा पर और समझौते पर सविशेष प्रकाश डालते हैं। समझौते के दिन सुबह गांधीजी ने अपने आश्रमवासियों से जो बातें इस बारे में कही थीं वे यहाँ उनकी आज्ञा से दी जाती हैं: 'आशा है कि आज दस बजे से पहले समझौता हो जायगा। इस समझौते को मैं अपनी प्रमादरहित स्थिति में देख रहा हूँ, और देख रहा हूँ कि यह ऐसा हुआ है, जिसे मैं कभी स्वीकार न करता। लेकिन इसमें दोष मेरी अनशन संबंधी प्रतिज्ञा का है। मेरी इस प्रतिज्ञा में कई दोष हैं। इसका यह मतलब नहीं कि दोष अधिक हैं, और गुण कम; लेकिन जिस प्रकार वह बहुतेरे गुणों से युक्त है, उसी प्रकार उसमें दोष भी बहुत हैं। जहाँ तक मज़दूरों से संबंध है, वह अत्यधिक गुणयुक्त है और उसके परिणाम भी उसी तरह सुन्दर प्रकट हुए हैं। किन्तु जहाँतक मालिकों का सम्बन्ध है, प्रतिज्ञा दोषपूर्ण है, और इसीलिए उस हद तक मुझे झुकना पड़ा है। मैं कितना ही इनकार क्यों न करूँ, तो भी लोगों को यह अनुभव हुए बिना न रहेगा कि मेरे उपवास के कारण मिलमालिकों पर दबाव पड़ता है, और दुनिया भी एकाएक मेरी बात को मानेगी नहीं। मेरी इस कनिष्ठ दशा के कारण मालिक स्वतंत्र नहीं रह पाये हैं। मैं मानता हूँ कि जब कोई आदमी किसी दबाव में पड़ा हो, तब उससे कुछ लिखा लेना,

कुछ शर्तें मनवा लेना या कुछ ले लेना न्यायोचित नहीं है। सत्याग्रही का यह तरीक़ा ही नहीं; इसीलिए मुझे इस मामले में झुकना पड़ा है। शरम में पड़ा हुआ आदमी और क्या कर सकता है? मैं थोड़ी-थोड़ी करके अपनी माँगें पेश करता गया, **और मालिकों ने उनमें से जितनी स्वेच्छा से मान लीं, उतनी से मुझे संतोष करना पड़ा**। मैं चाहूँ तो अपनी तमाम माँगें उनसे पूरी करा सकता हूँ, लेकिन उनको ऐसे संकट में डालकर मैं उनसे अपनी वे माँगें कभी पूरी नहीं करा सकता। मेरे लिए तो यह व्रत तोड़कर विष्टा खाने के बराबर होगा। समय पाकर अमृतपान करनेवाला मैं विष्ठा कैसे खा सकता हूँ?'
इसके बाद भी किसी स्पष्टीकरण की ज़रूरत रह जाती है क्या? अथवा किसी टीका-टिप्पणी की गुंजाइश रहती है क्या? फिर भी जो जानते नहीं, उनकी जानकारी के लिए यह कह देना ज़रूरी है कि पंच-फ़ैसले के अनुसार भत्ते की रक़म को क़बूल रखने में प्रतिज्ञा का तनिक भी भंग नहीं हुआ था; क्योंकि समझौते के पहले लड़ाई के दिनों में भी मज़दूरों की ओर से तो पंच की ही माँग पेश की गई थी, पर उस समय मालिकों ने उस माँग को मंज़ूर करना ठीक न समझा था। अगर पंच का सिद्धान्त मान लिया जाता, तो मज़दूरों का अपना कोई स्वतंत्र आग्रह था ही नहीं। और समझौते में पंच का यही सिद्धान्त मान लिया गया था।*

---

* अन्तिम पत्रिका में इस विषय का सुन्दर विवेचन किया गया है। फिर भी यह कहना ज़रा कठिन ही है कि मज़दूरों के सामने ३५ प्रतिशत की वृद्धि अथवा पंच के उसूल का स्वीकार, ये दोनों ध्येय थे।

यह कहना भी ग़लत ही है कि चूँकि मिलमालिकों ने गांधीजी के प्रति दयार्द्र होकर उनकी माँगें मंज़ूर कर ली थीं, इसलिए मज़दूरों की लड़ाई नीरस बन गई थी। समझौते से पहले मिल-मालिकों ने जो दलीलें पेश कीं, और इन दलीलों को पेश करने में उन्होंने जितने दिन बिताये, उससे साफ़ मालूम होता है कि मालिकों ने बिना सोचे-समझे केवल अपने मन की मौज के खातिर मज़दूरों की माँग नामंज़ूर कर दी थी। फिर. श्री० आनन्दशंकरभाई का फ़ैसला मालूम होने से पहले ही कई मिलों में मज़दूरों को ३५ प्रतिशत और कई जगह ३५ से भी अधिक भत्ता मिलने लग गया था। इससे भी साबित होता है कि मालिकों के सामने अबेर-सबेर कम से कम ३५ प्रतिशत देने के सिवा और कोई चारा न था। मिलमालिकों की ओर से प्रकाशित कुछ पत्रिकाओं में से अन्तिम पत्रिका में श्री० अंबालालभाई के नाम भेजा गया श्रीमती एनी बेसेण्ट का तार — 'For India's sake, try persuade owners' yield and save Gandhi's life' — उद्धृत करके मालिकों ने अपनी उदारतावश गांधीजी को मौत से बचा लेने का दावा किया है। इस पर क्या कहा जाय? पाठकों को हमारी सलाह है कि वे मालिकों की इस पत्रिका को मज़दूर पक्ष की अन्तिम पत्रिका के साथ रखकर पढ़ें। शायद ही कोई जानता हो कि उसी दिन गांधीजी को जो अनेक तार मिले थे, उनमें मिस फेरिंग नामक एक डेनिश साध्वी की ओर से नीचे लिखा तार आया था: 'Greater love knoweth no man than that he layeth down his life for the sake of his fellowmen.'

इस इतिहास के बाद और कुछ लिखने को रह नहीं जाता।

मज़दूरों और मिल-मालिकों की ओर से चुने गये पंच श्री० आनंदशंकर ध्रुव के सामने दोनों पक्षों की तरफ़ से जो बातें, जो हक़ीक़तें पेश की गई थीं, वे अक्षरशः परिशिष्ट में दी हैं, और परिशिष्ट में ही पंच का निर्णय भी दिया है, अतएव यहाँ उसे दोहराने की ज़रूरत नहीं मालूम होती। मिलमालिकों ने मज़दूर पक्ष की एक भी हक़ीक़त का जवाब देने की ज़रूरत नहीं समझी। उलटे मिलउद्योग के दो बड़े दलों के बीच जो संबंध है, तथा होना चाहिए, उसके बारे में उन्होंने अपने कुछ संकुचित विचार ही पेश किये। अतएव आश्चर्य नहीं कि पंच महोदय को उनके वक्तव्य में से तथ्य की कोई बात न मिली हो। उन्होंने स्वयं यह भी अनुभव किया कि पहले की बनिस्बत छः गुना और तीन गुना मुनाफ़ा कमानेवाले मिल-मालिक बाध्य किये जाने पर मज़दूरों को मनचाहा इज़ाफ़ा दे सकते हैं, अतएव उन्होंने **व्यावहारिक न्याय** के रूप में यह फ़ैसला सुना दिया कि : 'मिलमालिकों को चाहिए कि वे कारीगरों को झगड़े से संबंध रखनेवाले शेष सारे समय का वेतन ३५ प्रतिशत वृद्धि के साथ दें — यानी २७॥ टका दे चुकने पर शेष रही हुई रक़म वे कारीगरों को दें।' इस प्रकार जिस निश्चय के साथ गांधीजी ने मज़दूरों से कहा था कि : 'पंच से हम ३५ प्रतिशत ले सकेंगे,' उनका वह निश्चय अक्षरशः सच साबित हुआ।

गांधीजी के पुण्य-प्रताप से अहमदाबाद को और अहमदाबाद के निमित्त से सारे हिन्दुस्तान को इस सीधी, सुन्दर और निर्दोष लड़ाई का सुख लूटने को मिला। इससे पहले हिन्दुस्तान में कई बार अलग-अलग जगहों में मालिकों और मज़दूरों के बीच लड़ाई-झगड़े हुए हैं, लेकिन उनमें से एक भी इस लड़ाई की तरह पवित्र साधनों से, धन के नहीं, बल्कि निरे संकल्प के बल पर

और संपूर्ण मिठास के साथ नहीं लड़ी गई; किसी भी लड़ाई का परिणाम इस लड़ाई के परिणाम के समान दोनों दलों के लिए हितकारक और उन्नतिप्रद नहीं हुआ; और इस लड़ाई के कारण भविष्य में किसी भी प्रकार के संघर्ष की संभावना अथवा उसके फलस्वरूप किसी गंभीर परिस्थिति के उत्पन्न होने की आशंका इतनी कम हो गई है कि आज उसकी कल्पना करना भी कठिन है।

लड़ाई के दिनों में प्रकाशित पत्रिकायें

१

ता० २२ फरवरी से यह लॉक आउट शुरू है, और उसी दिन से बुनाई विभाग के कारीगरों के पास कोई काम नहीं है। जब मिलमालिकों ने महामारी के कारण दिये जानेवाले भत्ते को बन्द करने की सूचना निकाली और उसके सम्बन्ध में ग़लतफ़हमियाँ खड़ी हुईं, तो मालिकों की ओर से यह कहा गया था कि मज़दूरों और मालिकों के आपसी झगड़े का फ़ैसला पंच द्वारा करा लिया जाय। यह मान लिया गया था कि मज़दूर भी इससे सहमत ही होंगे। आखिर ता० १४-२-'१८ के दिन मिलमालिकों ने तय किया कि महामारी के भत्ते के बदले में महँगाई का कितना अधिक भत्ता देना उचित होगा, इसका फ़ैसला पंचों द्वारा करा लिया जाय। फलतः मज़दूरों की ओर से महात्मा गांधीजी, श्री० शंकरलाल बैंकर और श्री० वल्लभभाई पटेल, और मालिकों की ओर से सेठ अंबालाल साराभाई, सेठ जगाभाई दलपतभाई और सेठ चंदुलाल पंच नियुक्त किये गये और कलेक्टर साहब इस पंच-समिति के सभापति बनाये गये। इसके बाद ही किन्हीं ग़लतफ़हमियों की वजह से मज़दूरों ने हड़ताल कर दी। यह मज़दूरों की भूल थी। मज़दूर अपनी भूल सुधारने को तैयार भी हुए। पर मालिकों ने सोचा कि जब मज़दूरों ने पंचों के फ़ैसले से पहले

ही हड़ताल करने की ग़लती की है, तो अब वे अपने पंच सम्बन्धी प्रस्ताव को रद कर सकते हैं, और उन्होंने वह प्रस्ताव रद कर दिया। इसके साथ उन्होंने यह भी तय किया कि मज़दूरों को उनकी चढ़ी हुई तनख़्वाह चुका दी जाय, और अगर २० प्रतिशत भत्ते से उन्हें संतोष न हो तो उनको रुख़सत दे दी जाय। बुनकरों को संतोष न हुआ, वे बाहर निकल आये, और मालिकों का 'लॉक आउट' शुरू हुआ। मज़दूर पक्ष के पंचों ने जब अपनी ज़िम्मेदारी का विचार किया, तो वे इस नतीजे पर पहुँचे कि उन्हें मज़दूरों को कुछ न कुछ सलाह तो देनी ही चाहिए और उनको यह भी बताना चाहिए कि वे उचित रूप से कितना इज़ाफ़ा माँग सकते हैं। अतः इस सम्बन्ध में उन्होंने चर्चा चलाई, मालिकों और मज़दूरों के हित का विचार किया, आसपास की परिस्थिति की जाँच की, और यह तय किया कि ३५ फ़ीसदी इज़ाफ़े की माँग उचित है, अतएव मज़दूरों को इतना इज़ाफ़ा माँगने की सलाह देनी चाहिए। मज़दूरों को यह सलाह देने से पहले उन्होंने मालिकों को अपने इस निर्णय से सूचित किया और लिखा कि यदि उन्हें इसके विरोध में कुछ कहना हो, तो उस पर विचार किया जायगा। पर मालिकों ने इस संबंध में अपना कोई विचार प्रकट नहीं किया। मज़दूरों की अपनी माँग ५० प्रतिशत की थी; उसे कम करके उन्होंने ३५ प्रतिशत माँगने का निश्चय किया।

मज़दूरों की प्रतिज्ञा

मज़दूरों ने नीचे लिखा निश्चय किया है:

१. जुलाई के वेतन पर जबतक ३५ प्रतिशत इज़ाफ़ा न मिलेगा, वे काम पर न जायेंगे।

२. लॉक आउट के दिनों में किसी भी प्रकार का उपद्रव न करेंगे, मारपीट से बचेंगे, लूटपाट से दूर रहेंगे, मालिकों की सम्पत्ति को नुकसान न पहुँचायेंगे, गालीगलौज से बचेंगे और शान्तिपूर्वक रहेंगे। मज़दूर अपनी इस प्रतिज्ञा को किस प्रकार पूर्ण कर सकते हैं, इसका विचार पत्रिका के अगले अंक में किया जायगा।

मज़दूरों को मेरी सलाह है कि उन्हें जो कुछ भी कहना हो, वे किसी भी समय मेरे बंगले पर आकर मुझसे कह सकते हैं।

२

कल के अंक में हम देख चुके हैं कि मज़दूरों की प्रतिज्ञा क्या है। अब हमें यह देखना है कि उस प्रतिज्ञा का पालन कैसे किया जाय। हम जानते हैं कि मालिकों के पास करोड़ों रुपये हैं, और मज़दूरों के पास कुछ भी नहीं। यद्यपि मज़दूरों के पास पैसा नहीं है, तो भी उनके पास काम कर सकने योग्य हाथ पैर हैं। और, दुनिया का कोई हिस्सा ऐसा नहीं, जहाँ मज़दूरों के बिना काम चल सकता हो। इसलिए अगर मज़दूर समझ ले, तो उसे सहज ही पता चल जाय कि सच्ची सत्ता तो उसीको है। बिना मज़दूर के पैसा असहाय-सा बन जाता है। अगर मज़दूर इस बात को समझ जाय, तो उसे यह विश्वास भी हो जाय कि विजय उसीकी होगी। लेकिन इस तरह की सत्ता धारण करनेवाले मज़दूर में कुछ गुण होने चाहिएँ। अगर उसके पास ये गुण नहीं हैं, तो वह कुछ कर नहीं सकता। अब हम देखें कि ये गुण क्या हो सकते हैं।

१. मज़दूर को सत्यवादी होना चाहिए। उसके लिए झूठ बोलने का कोई कारण ही नहीं रहता। लेकिन अगर वह झूठ बोलता है तो उसे मुँहमाँगी मज़दूरी नहीं मिल सकती। सच बोलनेवाला हमेशा अपनी बात पर क़ायम रहता है, और जो अपनी बात पर क़ायम रहता है, वह कभी हारता नहीं।

२. हरएक में हिम्मत होनी चाहिए। 'मेरी नौकरी गई, अब मेरा क्या होगा?' इस तरह की झूठी दहशत के कारण हममें से कइयों को हमेशा ग़ुलामी करनी पड़ती है।

३. हममें न्यायबुद्धि होनी चाहिए। अगर हम अपनी योग्यता से अधिक माँगेंगे, तो हमें बहुत थोड़े मालिक मिलेंगे, और शायद न भी मिलें। हमने अपनी इस लड़ाई में जिस इज़ाफ़े की माँग की है, वह मुनासिब ही है. इसलिए हमें विश्वास रखना चाहिए कि देर में या जल्दी ही हमें इन्साफ़ मिलेगा और ज़रूर मिलेगा।

४. मालिकों पर हमें किसी तरह की नाराज़ी न रखनी चाहिए, और न उनके लिए दिल में दुश्मनी के कोई ख़याल आने देने चाहिएँ। आख़िर हमें नौकरी तो उन्हीं के यहाँ करनी है। ग़लती हरएक आदमी से होती है। हमारा अपना ख़याल है कि माँगा हुआ इज़ाफ़ा न देकर मिलमालिक ग़लती कर रहे हैं। अगर हम अन्ततक अपनी टेक पर सचाई के साथ क़ायम रहे, तो मालिक अपनी भूल ज़रूर सुधार लेंगे। इस समय तो वे ग़ुस्से में हैं। उनके दिल में यह शक भी पैदा हो चुका है कि अगर वे आज मज़दूरों की माँगें मंज़ूर कर लेंगे तो फिर मज़दूर उन्हें हमेशा परेशान किया करेंगे। इस शक को मिटाने के लिए हमें अपने आचरण द्वारा मालिकों को अधिक से अधिक विश्वास

दिलाना चाहिए। इस सम्बन्ध में हमारा पहला काम तो यह होना चाहिए कि हम उन्हें अपना दुश्मन न समझें।

५. हरएक मज़दूर को यह अच्छी तरह याद रखना चाहिए कि इस जंगी लड़ाई में मुसीबतों का सामना तो करना ही पड़ेगा। लेकिन जो मुसीबतें जानबूझ कर उठाई जाती हैं, वे अन्त में सुख देनेवाली होती हैं। यह दुःख की बात है कि हमें पेटभर खाने को भी नहीं मिलता। फिर भी अपनी नासमझ के कारण हम इस दुःख को सहते हैं, और जैसे-तैसे ज़िन्दगी के दिन बिता देते हैं। इस दुःख को मिटाने के लिए हमने एक तरीक़ा अख़्तियार किया है: हम मालिकों के सामने अपनी यह माँग पेश कर चुके हैं, कि जो इज़ाफ़ा हम चाहते हैं, उसके बिना हम अपना पेट भली-भाँति पाल नहीं सकते। अगर रोज़-रोज़ की इस भूख को मिटाने के लिए माँगा हुआ इज़ाफ़ा हमें न मिले, तो हमें जानबूझकर आज ही भूख के दुःख को सह लेना चाहिए। आख़िर मालिक भी कबतक कठोर बने रहेंगे?

६. आख़िरी बात यह है कि ग़रीबों का रक्षक भगवान है। हमें समझ लेना चाहिए कि तदबीर करना हमारा काम है, फल हमें अपनी तक़दीर के अनुसार मिल ही जायगा। यह समझकर हमें भगवान पर भरोसा रखना चाहिए और जब तक हमारी दरख़ास्त मंज़ूर नहीं होती, हमें शान्तिपूर्वक अपनी बात पर मज़बूती के साथ डटे रहना चाहिए।

जो मज़दूर इस तरह का आचरण करेंगे, उन्हें अपनी प्रतिज्ञा के पालन में कभी कठिनाई न आयेगी।

लॉक आउट के दिनों में मज़दूर अपना समय किस प्रकार बितायें, इसका विचार कल की पत्रिका में किया जायगा।

हमने मज़दूरों की प्रतिज्ञा पर लिखा और यह भी सोच लिया कि वह प्रतिज्ञा किस प्रकार पाली जाय। अब आज हम यह देखें कि मज़दूर लॉक आउट के दिनों में अपना समय किस प्रकार बितायें। कहावत है कि बेकार के सिर पर शैतान सवार रहता है। इसलिए अहमदाबाद में दस हज़ार आदमियों का बेकार रहना कभी अच्छा हो ही नहीं सकता। हम जो कुछ चाहते हैं, उसे पाने के लिए आज की चर्चा का विषय बहुत ही महत्त्व का है। समय के सदुपयोग की चर्चा करने से पहले यह बता देना ज़रूरी है कि बेकारी के इन दिनों में मज़दूरों को क्या-क्या नहीं करना चाहिए :

१. जुआ खेलने में समय न गँवाना चाहिए।

२. दिन में सोकर समय न खोना चाहिए।

३. सारा दिन मिलमालिकों की और लॉक आउट की ही बातें करने में समय न बिताना चाहिए।

४. कइयों को चाय की दूकानों में जाकर बैठने, वहाँ फ़जूल की गपशप लड़ाने और अनावश्यक चीज़ें खाने-पीने की आदत पड़ जाती है। मज़दूरों को ऐसे स्थानों का बिलकुल त्याग करना चाहिए।

५. जबतक लॉक आउट ज़ारी है, मज़दूरों को मिलों में न जाना चाहिए।

अब हम देखें कि हमें क्या करना चाहिए

१. बहुतेरे मज़दूरों के घर और उनके घर के आस-पास की जगह गन्दी पाई जाती है। काम के दिनों में आदमी इन

बातों की ओर ध्यान नहीं दे सकता। अब चूँकि लाज़िमी तौर पर घर रहने का मौक़ा मिला है, मज़दूर अपना कुछ समय अपने घर और आँगन की सफ़ाई में और घरों की मरम्मत करने में बिता सकते हैं।

२. जो पढ़े-लिखे हैं, उन्हें पुस्तकें पढ़ने और अपना अभ्यास बढ़ाने में समय बिताना चाहिए। वे अनपढ़ों को पढ़ा भी सकते हैं। इस तरह मज़दूर एक-दूसरे की मदद करना सीख सकेंगे। जिन्हें पढ़ने का शौक़ है, उनको चाहिए कि वे दादाभाई पुस्तकालय और वाचनालय में, अथवा ऐसी दूसरी संस्थाओं में, जहाँ मुफ़्त में पढ़ने को मिलता है, जायें और वहाँ अपना समय बितायें।

३. जिन्हें छोटी-मोटी दस्तकारियों का ज्ञान है, यानी जो दर्ज़ी का, बढ़ई का या नक्काशी वग़ैरा का नफ़ीस का काम जानते हैं, वे ख़ुद अपने लिए काम तलाश कर सकते हैं, और न मिलने पर हमसे भी इसमें मदद ले सकते हैं।

४. जिस धन्धे से आदमी की अपनी जीविका चलती है, उसके सिवा भी उसे किसी दूसरे धन्धे का थोड़ा-बहुत ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिए। इस तरह मज़दूर चाहें, तो कुछ नये और आसान धन्धों को सीखने में भी वे अपना समय बिता सकते हैं, और इस काम में भी वे हमसे मदद पा सकते हैं।

हिन्दुस्तान में एक धन्धा करनेवाला आदमी दूसरे धन्धे को अपनाने में हीनता का अनुभव करता है; कुछ धन्धे यहाँ अपने आप में हलके माने जाते हैं। ये दोनों विचार ग़लत हैं। जिन धन्धों की आदमी को अपने जीवन के लिए ज़रूरत है, उन धन्धों में नीच-ऊँच का कोई भेद होता ही नहीं। इसी तरह

अपने जाने हुए धन्धे के सिवा दूसरा धन्धा करने में भी शर्म की कोई बात नहीं। हम मानते हैं कि कपड़ा बुनने, पत्थर फोड़ने, लकड़ी काटने या चीरने, अथवा खेतों में मज़दूरी वग़ैरा करने के सभी धन्धे ज़रूरी हैं, और सम्मान योग्य हैं। अतएव आशा की जाती है कि मज़दूर निकम्मे बैठकर वक्त गँवाने के बदले ऊपर लिखे अच्छे कामों में लगकर अपना समय बितायेंगे।

मज़दूरों के कर्त्तव्यों का विचार करने के बाद अब यह बता देना भी ज़रूरी है कि मज़दूर मुझसे क्या आशा रख सकते हैं। अगली पत्रिका में हम इसीका विचार करेंगे।

४

हमने यह तो देख लिया कि मज़दूर अपनी प्रतिज्ञा किस तरह पालें और लॉक आउट के दिनों में अपना समय किस प्रकार बितायें। अब इस पत्रिका में यह बताना है कि हम उनकी क्या मदद करेंगे। मज़दूरो को हमारी प्रतिज्ञा जानने का अधिकार है। और हमारा कर्त्तव्य है कि हम उन्हें अपनी प्रतिज्ञा बतायें।

पहले हम यह देख लें कि हमसे क्या नहीं हो सकेगा:

१. हम मज़दूरों को उनकी किसी बुराई में मदद नहीं पहुँचायेंगे।

२. अगर मज़दूर कोई बुरा रास्ता पकड़ते हैं, उचित से अधिक माँगते हैं, या किसी भी तरह का उपद्रव करते हैं, तो हमारा कर्त्तव्य हो जाता है कि हम उनका त्याग करें, और उनको मदद पहुँचाना बन्द कर दें।

३. हम मालिकों की बुराई कभी चाह नहीं सकते; **हमारे प्रत्येक कार्य में उनके हित का विचार भी रहता ही है।** मालिकों के हित की रक्षा करके हम मज़दूरों का हित साधेंगे।

अब हम क्या करेंगे सो देखिये :

१. मज़दूरों ने जैसा सुन्दर व्यवहार आजतक किया है, वैसा ही जबतक वे क़ायम रक्खेंगे, हम बराबर उनका साथ देंगे।

२. उन्हें ३५ फ़ीसदी की बढ़ौती दिलाने के लिए हम अपनी शक्तिभर कोशिश करेंगे।

३. फ़िलहाल तो हम मालिकों से ही प्रार्थना कर रहे हैं। सर्वसाधारण की सहानुभूति प्राप्त करने और लोकमत को जगाने की कोशिश अभी हमने की नहीं है। लेकिन अवसर आने पर हम सारे हिन्दुस्तान के सामने मज़दूरों की स्थिति रखने को तैयार हैं, और हमें आशा है कि हम आम जनता की सहानुभूति अपनी ओर आकर्षित कर सकेंगे।

४. जबतक मज़दूरों को उनका अधिकार प्राप्त न हो जायगा, हम चैन नहीं लेंगे।

५. मज़दूरों की आर्थिक, नैतिक और शिक्षा-संबंधी स्थिति को जानने का प्रयत्न हम कर रहे हैं। हम उन्हें यह बताने की क़ोशिश करेंगे कि उनकी माली हालत कैसे सुधरे; उनमें नैतिकता का विकास किस प्रकार हो; अगर वे गन्दे रहते हैं, तो उनमें सफ़ाई का खयाल कैसे पैदा हो, और अगर वे अज्ञान हैं, तो उन्हें ज्ञान कैसे मिले। हम इसके लिए हरतरह की मेहनत करेंगे, तरह-तरह के ज़रूरी उपाय सोचेंगे और जितना हो सकेगा, प्रबंध करेंगे।

६. इस लड़ाई में जिनको परिस्थितिवश भूखों मरना पड़ेगा, या काम न मिल सकने के कारण बेकार रहना पड़ेगा, उनको खिलाकर हम खायेंगे और ओढ़ाकर हम ओढ़ेंगे।

७. बीमार मज़दूरों की सार-संभाल करेंगे: डॉक्टरों और वैद्यों की मदद लेंगे ।

८. हम अपनी ज़िम्मेदारी को समझकर इस काम में पड़े हैं । हम मज़दूरों की माँग को बिलकुल उचित समझते हैं और मानते हैं कि उसकी पूर्ति करने से मालिकों का कोई नुकसान नहीं, बल्कि अन्त में लाभ ही होगा । इसीलिए हमने इस काम को अपने हाथ में लिया है ।

अगले अंक में हम मालिकों की स्थिति का विचार करेंगे।

५

हम अपनी स्थिति का विचार कर चुके । मालिकों की स्थिति पर विचार करना कठिन है ।

मज़दूरों की हलचल के दो परिणाम हो सकते हैं:

१. मज़दूरों को ३५ प्रतिशत इज़ाफ़ा मिले ।

२. मज़दूरों को बिना इज़ाफ़े के काम पर जाना पड़े ।

बढ़ा हुआ पगार मिलने से मज़दूरों का कल्याण होगा, और मालिकों को यश मिलेगा । अगर मज़दूरों को बिना इज़ाफ़े के काम पर जाना पड़ा, तो वे बुज़दिल और ग़ुलाम बनकर मालिकों की शरण जायेंगे । अतएव बढ़ा हुआ भत्ता या इज़ाफ़ा मिलने से दोनों दलों को लाभ होगा । मज़दूरों के लिए उनकी हार बहुत हानिकर होगी ।

मालिकों की हलचल के भी दो परिणाम हो सकते हैं:

१. मालिक मज़दूरों को इज़ाफ़ा दें ।

२. मालिक मज़दूरों को इज़ाफ़ा न दें ।

अगर मालिक मज़दूरों को इज़ाफ़ा देंगे, तो मज़दूर सन्तुष्ट होंगे, उन्हें न्याय मिलेगा। मालिकों को डर है कि मज़दूरों को मुँहमांगा देने से वे उद्धत बन जायेंगे। यह डर बेबुनियाद है। मुमकिन है कि मज़दूर आज दब जायँ, पर यह नामुमकिन नहीं कि वे मौक़ा पाकर फिर सिर उठायें। यह भी मुमकिन है कि दबे हुए मज़दूर मन में दुश्मनी रक्खें। दुनिया का इतिहास कहता है कि जहाँ जहाँ मज़दूर दबाये गये हैं, वहाँ वहाँ उन्होंने मौक़ा पाकर मुखालिफ़त की है। मालिकों का खयाल है कि मज़दूरों की माँग को मंजूर कर लेने से उन पर उनके सलाहकारों का प्रभाव बढ़ जायगा। अगर सलाहकारों की दलीलें सच हैं, और वे मेहनती हैं, तो मज़दूर हारें या जीतें, वे अपने सलाहकारों को न छोड़ेंगे; इससे भी बढ़कर ध्यान देने योग्य बात तो यह है कि सलाहकार कभी मज़दरों को न छोड़ेंगे। जिन्होंने सेवाधर्म को अंगीकार किया है, वे तो अपने उस धर्म को सामनेवालों का विरोध होने पर भी न तजेंगे। ज्यों-ज्यों वे निराश होंगे, त्यों-त्यों अधिक सेवापरायण बनते जायँगे। अतएव मालिक कितनी ही कोशिश क्यों न करें, वे सलाहकारों को मज़दूरों के सम्पर्क से दूर नहीं रख सकेंगे। ऐसी दशा में मज़दूरों को हराकर वे क्या पायेंगे? मज़दूरों के असन्तोष को छोड़ और कुछ उनके पल्ले न पड़ेगा। दबे हुए मज़दूरों को मालिक हमेशा शक की निगाह से देखेंगे।

मज़दूरों को मुँहमाँगा इज़ाफ़ा देकर मालिक उन्हें ख़ुश कर सकेंगे। अगर मज़दूर अपने कर्त्तव्य में चूकेंगे, तो मालिक हमेशा उनके सलाहकारों की मदद पा सकेंगे, और इस समय दोनों दलों की जो हानि हो रही है, उसे रोक सकेंगे। अगर

मज़दूर संतुष्ट हुए, तो वे हमेशा मालिकों का आभार मानेंगे, और दोनों में बराबर प्रेम बढ़ेगा । इस प्रकार मज़दूरों की सफलता में ही मालिकों की भी सफलता है, और मज़दूरों की हार में मालिकों की भी हार है । इस सीधे सच्चे न्याय के बदले मालिकों ने जिस न्याय को अपनाया है, वह पश्चिमी अथवा आजकल का राक्षसी न्याय है ।

यह न्याय कैसा है, इसका विचार हम अगले अंक में करेंगे ।

६

जिस न्याय में सहानुभूति और दया का भाव है, वह शुद्ध न्याय है । इसे हम हिन्दुस्तानवाले पूर्व का अथवा प्राचीन न्याय कहते हैं । जिसमें सहानुभूति या दया का भाव नहीं रहता, उसे हम राक्षसी, या पश्चिमी अथवा आधुनिक न्याय कहते हैं । दया अथवा सहानुभूति के कारण प्रायः बेटा बाप के लिए और बाप बेटे के लिए बहुत कुछ त्याग करता है, जिससे अन्त में दोनों को लाभ ही होता है । त्याग करनेवाला त्याग में एक प्रकार के शुद्ध अभिमान का अनुभव करता है, और इस तरह के त्याग को वह अपनी कमज़ोरी की नहीं, बल्कि ताक़त की निशानी समझता है । हिन्दुस्तान में एक ज़माना वह भी था, जब नौकर एक ही घर में पीढ़ियों तक काम करते थे । जिस घर में वे काम करते थे, उसके कुटुम्बी समझे जाते थे, और वैसा मान पाते थे । वे अपने मालिक के दुःख से दुःखी होते और मालिक उनके सुख-दुःख में शरीक रहते । जब यह सब था, तब हिन्दुस्तान का जीवन बहुत सरल माना जाता था, और हज़ारों साल तक वह इसी तरीक़े पर चलकर टिका रहा । आज भी इस भावना का नाश नहीं हुआ है । जहाँ ऐसी व्यवस्था रहती है, वहाँ किसी तीसरे

आदमी का या पंच का काम क्वचित् ही पड़ता है। मालिक और नौकर अपने आपसी झगड़ों का फ़ैसला आपस में मिलकर कर लेते हैं। एक-दूसरे की ज़रूरत या गरज़ को देखकर तनख्वाह घटाने या बढ़ाने की कोई बात इसमें थी नहीं। नौकरों की कमी का खयाल रखकर न तो नौकर ज्यादा तनख्वाह माँगते थे, और न नौकरों की विपुलता देखकर मालिक 'पगार' घटाते थे। इस नीति में आपस के सद्भावों का, मर्यादा, विनय और प्रेम का, प्राधान्य रहता था, और यह धर्म अव्यावहारिक नहीं माना जाता था, बल्कि आमतौर पर सबके ऊपर इसकी सत्ता चलती थी। आज हमारे पास इस बात के ऐतिहासिक प्रमाण मौजूद हैं कि इस शुद्ध न्याय के अनुसार चलनेवाली हमारी प्रजा के अन्दर अब तक सैकड़ों भगीरथ काम हो चुके हैं। यह पूर्व का अथवा प्राचीन न्याय है।

पश्चिम में आजकल ठीक इससे उलटा काम चल रहा है। कोई यह न सोचे कि वहाँ के सब लोगों को यह आधुनिक न्याय पसन्द है। पश्चिम में ऐसे बहुतेरे साधु पुरुष पड़े हैं, जो प्राचीन नीति को अपनाकर निर्दोष भाव से अपना जीवन बिताते हैं। फिर भी पश्चिम की खास हलचलों में आजकल दया-माया को कोई स्थान नहीं है। अगर मालिक अपना सुभीता देखकर वेतन की नीति ठहराता है, तो वह न्याय्य माना जाता है। नौकर की ज़रूरतों का विचार करने की कोई आवश्यकता ही नहीं मानी जाती। इसी तरह मज़दूर भी अपनी इच्छानुसार मालिक के धन्धे का विचार किये बिना तनख्वाह माँग सकता है, और वह न्यायोचित माना जाता है। वहाँ न्याय यह है कि सब अपनी-अपनी फ़िकर कर लें; दूसरा कोई किसीकी फ़िकर करने को बँधा हुआ नहीं है। इसी नीति के अनुसार यूरोप में आजकल यह लड़ाई चल रही

है । दुश्मन को किसी भी तरह दबाने में मर्यादा की कोई ज़रूरत नहीं समझी जाती । पुराने ज़माने में भी ऐसी लड़ाइयाँ तो हुई होंगी । लेकिन उसमें प्रजा शरीक नहीं होती थी । इष्ट यह है कि हम हिन्दुस्तान में इस अघोर न्याय को न अपनायें । जिस दिन अपने बल के बूते, मालिकों का विचार किये बिना, मज़दूर अपनी माँगें पेश करेंगे, उस दिन माना जायगा कि उन्होंने आधुनिक राक्षसी न्याय को अपनाया है । मज़दूरों के मुक़ाबिले में मालिकों का संगठन चींटियों के खिलाफ़ हाथियों का दल खड़ा करने के समान है । अगर मालिक धर्म का विचार करें, तो उन्हें मज़दूरों का विरोध करते हुए काँपना चाहिए । हमारी जान में पहले हिन्दुस्तान में लोगों ने कभी ज्ञानपूर्वक इस तरह का न्याय अपनाया नहीं था कि मज़दूरों की भूख मालिकों का सुख है । न्याय वही हो सकता है, जिससे किसीका कभी कोई नुकसान न हो । हमें दृढ़ आशा है कि गौरवशाली गुजरात की इस राजधानी के श्रावक अथवा वैष्णवधर्मी मालिक मज़दूरों को झुकाने में या हठपूर्वक उन्हें कम पगार देने में कभी अपनी जीत न समझेंगे । हमें विश्वास है कि पश्चिम का यह बवण्डर जितनी तेज़ी से उठा है, उतनी ही तेज़ी से बैठ भी जायगा । वह बैठे या न बैठे, हम अपने मज़दूरों को आज पश्चिम की इस प्रवृत्ति का पाठ पढ़ाना नहीं चाहते । हम तो उनसे अपने देश का पुराना न्याय, जैसा हमने उसे जाना और समझा है, पालना और पलवाना चाहते हैं, और उनके अधिकार को सिद्ध करने में उनकी मदद करने के इच्छुक हैं ।

इस पश्चिमी न्याय के कुछ बुरे परिणामों के उदाहरणों पर हम अगले अंक में विचार करेंगे ।

दक्षिण आफ्रिका एक महान् अंग्रेज़ी उपनिवेश है। कोई चार सौ वर्षों से वहाँ अंग्रेज़ों की बस्ती है। उन्हें स्वराज्य का अधिकार प्राप्त है। वहाँ की रेलवे में बहुतेरे गोरे मज़दूर काम करते हैं। इन मज़दूरों के साथ वेतन-संबंधी कुछ अन्याय हो रहा था। इस पर मज़दूरों ने केवल अपने वेतन का विचार करने के बदले समूची राज्यसत्ता हथियाने का विचार किया। यह अन्याय था, राक्षसी न्याय था। इसके परिणाम स्वरूप सरकार और मज़दूरों के बीच कटुता बढ़ी और दक्षिण आफ्रिका में चहुँ ओर भय छा गया। उन दिनों वहाँ कोई भी अपने को सुरक्षित न समझता था। आखिर दिन-दहाड़े दोनों दलों के बीच मार-काट मची, अनेक निर्दोष मनुष्य मारे गये। सारा प्रदेश फ़ौजी सिपाहियों से घिर गया। दोनों दलों का काफ़ी नुकसान हुआ। दोनों का इरादा एक-दूसरे को हराने का था। शुद्ध न्याय की किसीको पर्वाह न थी। दोनों एक-दूसरे की चर्चा बढ़ा-चढ़ाकर करते थे। किसीको आपसी सद्भाव की चिन्ता न थी।

जब यह सब हो रहा था, तभी हमारे मज़दूर वहाँ शुद्ध न्याय का पालन कर रहे थे। जब गोरों की यह हड़ताल हुई, २०,००० भारतीय मज़दूरों की हड़ताल चल रही थी। हम वहाँ की सरकार से शुद्ध न्याय के लिए लड़ रहे थे। सत्याग्रह हमारे मज़दूरों का हथियार था। उन्हें सरकार से कोई दुश्मनी न थी, वे सरकार का अनिष्ट भी नहीं चाहते थे, न सरकार को पदभ्रष्ट करने का कोई लोभ उनके सामने था। गोरे मज़दूर उनकी इस हड़ताल से लाभ उठाना चाहते थे। पर हमारे मज़दूरों ने साफ़ इनकार कर दिया। उन्होंने कहा : 'हमारी लड़ाई सत्याग्रह की लड़ाई

है। हम सरकार को परेशान करने के लिए नहीं लड़ रहे। इस-लिए जब तक आप लड़ते हैं, हम अपनी लड़ाई मुल्तवी रक्खेंगे।' यों कहकर हमारे मज़दूरों ने हड़ताल तोड़ दी। इसे हम शुद्ध न्याय कह सकते हैं। आखिर हमारे मज़दूरों की जीत हुई, और उससे सरकार का भी नाम हुआ; क्योंकि हमारी माँग को मंज़ूर करने में न्याय था। हमारे मज़दूरों ने सहानुभूति से काम लिया; विपक्षी के संकट को अपने लाभ का अवसर न माना। लड़ाई के अन्त में सरकार और प्रजा के बीच शत्रुता बढ़ने के बदले मित्रता बढ़ी, प्रेम बढ़ा, और हमारे मान की वृद्धि हुई। इस प्रकार शुद्ध न्याय के साथ लड़ी जानेवाली लड़ाई दोनों पक्षों के लिए लाभदायक साबित होती है।

इसी प्रकार यदि हम न्यायपूर्वक अपनी लड़ाई का संचालन करेंगे, मालिकों से शत्रुता न रक्खेंगे और सदा सचाई पर क़ायम रहेंगे, तो न सिर्फ़ हम जीतेंगे, बल्कि मालिकों और मज़दूरों के बीच प्रेम की वृद्धि होगी।

ऊपर के उदाहरण से जो दूसरी चीज़ हमें मिलती है, वह यह है कि सत्याग्रह के लिए दोनों पक्षों का सत्याग्रही होना ज़रूरी नहीं है। यदि एक पक्ष सत्याग्रही बना रहे, तो अन्त में विजय सत्याग्रह की ही होती है। जो शुरू में विषाक्त होकर लड़ता है, उसका विषैलापन भी सामने से विष न मिलने के कारण नष्ट हो जाता है। जब आदमी हवा में अपनी ताक़त आज़माना चाहता है, तो उसकी सारी ताक़त हवा हो जाती है। इसी तरह ज़हर तभी बढ़ता है, जब सामने से भी उसे ज़हर मिलता है।

अतएव अब हम इस बात को भलीभाँति समझ सकते हैं कि अगर हम दृढतापूर्वक लड़ेंगे और हिम्मत न हारेंगे, तो अन्त में जीत हमारी ही होगी।

अगली पत्रिका में हम कुछ सत्याग्रहियों के दृष्टांतों का विचार करेंगे।

८

इस अंक में हम संसारप्रसिद्ध सत्याग्रहियों का वर्णन नहीं करेंगे, बल्कि यह बताने की कोशिश करेंगे कि हमारे-आपके जैसे आदमी भी कितने दुःख उठा सके हैं। यह हमारे लिए अधिक लाभदायक होगा, और हमें अधिक दृढ़ बना सकेगा। हज़रत इमाम हसन और हुसैन अपने ज़माने के बड़े धीर-वीर सत्याग्रही हो चुके हैं। हम उनके नाम की पूजा करते हैं, लेकिन उनके स्मरण से सत्याग्रही नहीं बनते। हम सोचते हैं, कि उनकी ताक़त का हमारी ताक़त से मुक़ाबला क्या? ऐसा ही स्मरण करने योग्य नाम भक्त प्रह्लाद का है। लेकिन हम अकसर यह सोचकर रह जाते हैं कि उनकी-सी भक्ति, वैसी दृढ़ता, वह सत्य और शौर्य हम कहाँ से लायें? फलतः हम जैसे थे, वैसे ही बने रहते हैं। इसलिए आज हम यह देखें कि हमारे-आपके जैसे आदमियों ने क्या किया था। हरबतसिंह ऐसा ही एक सत्याग्रही था। वह ७५ वर्ष का एक बूढ़ा आदमी था। वह सात रुपये माहवार पर पाँच साल के लिए बँध कर दक्षिण आफ्रिका के खेतों में मज़दूरी करने पहुँचा था। पत्रिका के पिछले अंक में २०,००० भारतीयों की जिस हड़ताल का ज़िक्र आया है, उसमें हरबतसिंह भी शरीक हुआ था। कुछ हड़ताली क़ैद कर लिये गये थे, जिनमें बूढ़ा हरबतसिंह भी था। उसके साथियों ने उसे समझाया। कहा: 'बाबा, दुःख के इस दरिया में पड़ना तुम्हारा काम नहीं है। तुम जेल के लायक़ नहीं हो। अगर तुम इस लड़ाई में शामिल न भी हुए तो कोई तुम्हारी तरफ़ अँगुली नहीं उठा सकेगा।' जवाब में हरबतसिंह ने कहा:

'जब आप सब अपने सम्मान के लिए इतना दु:ख उठा रहे हैं, तब अकेला मैं ही बाहर रहकर क्या करूँ? मैं इस जेलखाने में मर भी जाऊँ तो क्या बुरा है?' और सचमुच हरबतसिंह उसी जेलखाने में मरा और अमर हो गया। वह जेल के बाहर मरता तो कोई उसका नाम भी न लेता। चूँकि वह जेल के अन्दर मरा था, इसलिए देशवासियों ने जेलवालों से उसकी लाश माँगी और सैकड़ों हिन्दुस्तानी उसकी लाश के पीछे स्मशान तक गये।

हरबतसिंह की तरह ही ट्रान्सवाल के व्यापारी अहमद महमद काछलिया का नाम भी स्मरणीय है। ईश्वर की दया से वे अभी जीवित हैं, और हिंदुस्तानियों को संगठित रखकर उनकी प्रतिष्ठा को बनाए हुए हैं। वे दक्षिण आफ्रिका में रहते हैं। जिस लड़ाई में हरबतसिंह ने अपने प्राण दिये, उसीमें सेठ अहमद महमद काछलिया कई बार जेल गये। अपना सारा व्यापार उन्होंने नष्ट होने दिया। आजकल वे ग़रीबी से रहते हैं, फिर भी वहाँ सब कोई उनका मान करते हैं। अनेक संकट सहकर भी वे अपनी टेक पर डटे रहे हैं।

जिस प्रकार एक बूढ़ा मज़दूर और अधेड उमर के एक प्रसिद्ध व्यापारी अपनी टेक के लिए जूझे और अनेक कष्टों में से गुज़रे, उसी प्रकार सत्रह वर्ष की एक नौजवान कुमारिका ने भी सब संकट सहे। नाम उसका वालियामा था। वह भी इस लड़ाई में क़ौम की टेक के खातिर जेल गई थी। जेल जाते समय वह बीमार थी। उसे बुखार आता था। जेल में बुखार बढ़ गया। जेलर ने उससे जेल छोड़ देने को कहा। वालियामा ने जेल छोड़ने से इनकार किया, और दृढ़तापूर्वक जेल की मीयाद पूरी की। जेल से रिहा होने के चौथे या पाँचवें दिन वह मर गई।

इन तीनों का यह शुद्ध सत्याग्रह था। तीनों ने दुःख सहे, तीनों जेल गये और अन्त तक अपनी टेक पर क़ायम रहे। हमारे सामने तो ऐसा कोई संकट नहीं है। हमें अपनी प्रतिज्ञा को निबाहने के लिए अधिक से अधिक जो सहन करना है, वह तो यही कि हम अपने मौजशौक़ को कुछ कम करें और अबतक जो तनख्वाह हमें मिलती थी, उसके बिना जैसे-तैसे अपना काम चलावें। यह कोई बहुत बड़ी बात नहीं है। जो काम इस ज़माने में हमारे ही भाई-बहन कर सके हैं, वैसा ही कुछ करना हमारे लिए कठिन न होना चाहिए।

इसका थोड़ा अधिक विचार हम अगले अंक में करेंगे।

९

कल हम तीन सत्याग्रहियों के दृष्टान्तों का विचार कर चुके हैं। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि इस लड़ाई में सिर्फ़ तीन ही सत्याग्रही थे। २०,००० आदमी एक साथ बेकार हो गये थे, और उनकी वह बेकारी दस-बारह दिन में दूर नहीं हुई थी। यह लड़ाई पूरे सात साल तक चली थी, और इतने समय तक सैकड़ों आदमियों ने डावाँडोल स्थिति में रहकर अपनी टेक निभाई थी। क़रीब तीन महीनों तक २०,००० मज़दूर बिना घरबार, बिना पगार के रहे थे। कइयों ने अपने पास की थोड़ी बहुत सम्पत्ति बेच कर उससे अपना काम चलाया। उन्होंने अपनी झोंपडियाँ खाली कर दीं, ओढ़ने-बिछाने का सामान, चारपाई, और चौपाये वग़ैरह बेच डाले और कूच पर निकल पड़े। उनमें से सैकड़ों ने कई दिन तक बीस-बीस मील की मंज़िलें तय कीं और सिर्फ़ डेढ़ पाव आटे की रोटी और ढाई तोला चीनी पर अपने दिन गुज़ारे। उनमें हिन्दू भी थे, और मुसलमान भी थे। बंबई

की जुम्मा मसज़िद के मुअज्जम के फ़रज़ंद (पुत्र) भी उनमें शामिल थे। उनका नाम इमाम साहब अब्दुल क़ादर बावज़ीर है। जिन्होंने कभी मुसीबत का मुँह तक नहीं देखा था, उन्होंने जेल की मुसीबतें सहीं, और जेल के अन्दर रहकर रास्तों की सफ़ाई करने, पत्थर तोड़ने वग़ैरह की मज़दूरी की, और महीनों तक बहुत ही सादा और नीरस ख़ूराक पर रहे। आज उनके पास अपनी कहने को एक फूटी कौड़ी भी नहीं है। सूरत ज़िले के दादामियाँ क़ाज़ी भी ऐसे ही लोगों में थे। सत्रह साल से कम उम्र के नारायण और नागप्पन नामक दो मद्रासी बालकों ने इसी लड़ाई में अपने प्राण खोये, उन्होंने धूप सहन की, लेकिन पीछे न हटे।

हमें याद रखना चाहिए कि जिन स्त्रियों ने कभी मज़दूरी नहीं की थी, वे इस लड़ाई में फेरीवाली बनकर घूमीं, और जेल में उन्होंने धोबिन का काम किया।

इन उदाहरणों का विचार करते हुए ऐसा कौन मज़दूर हम-में होगा, जो अपनी टेक को निबाहने के लिए मामूली तकलीफ़ें उठाने को तैयार न हो?

हम देखते हैं कि मालिकों ने जो पर्चे निकाले हैं, उनमें क्रोध के आवेश में आकर कुछ ऐसी बातें लिखी हैं, जो अशोभन हैं; कुछ बातों को जान में या अनजान में बढ़ाकर लिखा है, और कुछ को तोड़-मरोड़ कर लिखा गया है। हम गुस्से का जवाब गुस्से से तो दे ही नहीं सकते। उनमें दी गई अनुचित बातों को सुधारना भी ठीक नहीं मालूम होता। उनके संबंध में सिर्फ़ यह कहना ही काफ़ी होगा कि उनमें दी गई बातों के चक्कर में न तो हम पड़ें, और न झल्लायें। मज़दूरों के सलाहकारों के खिलाफ़ जो शिकायतें की गई हैं, वे अगर सच होंगी, तो यहाँ

उनका जवाब देने से झूठ साबित न हो सकेंगी। हम जानते हैं कि वे अनुचित हैं। यहां जवाब देकर उनके अनौचित्य को सिद्ध करने की अपेक्षा हम यह ठीक समझते हैं कि हमारा भावी व्यवहार इसको सिद्ध करे।

अगली पत्रिका में इस प्रश्न पर कुछ और विचार करेंगे।

१०

अपनी इस स्थिति में ऊपर के सवाल का विचार करना बहुत ज़रूरी है। 'लॉक आउट' को अभी क़रीब पंद्रह दिन हुए हैं, इतने में कुछ लोग कहने लगे हैं कि उनके पास खाने को नहीं हैं, कुछ कहते हैं कि वे मकान का किराया भी नहीं चुका सकते। बहुतेरे मज़दूरों के घरों की हालत बहुत ख़राब पाई गई है। उनमें हवा और उजेले का अभाव रहता है। घर पुराने हो गये हैं। आसपास बहुत गन्दगी है। मज़दूरों के बदन पर साफ़ कपड़े भी नहीं पाये जाते। कुछ धोबी का खर्च न उठा सकने के कारण गन्दे कपड़े पहनते हैं, और कुछ कहते हैं कि वे साबुन का खर्च भी बरदाश्त नहीं कर सकते। मज़दूरों के बालक मारे-मारे फिरते हैं। उन्हें अनपढ़ रहना पड़ता है। और कुछ मज़दूर तो अपने सुकुमार बालकों का कमाई के कामों में उपयोग करते हैं। यह घोर कंगालियत सचमुच शोकजनक है। अकेली ३५ टके की बढ़ोतरी इसका कोई इलाज नहीं। तनख्वाह दुगनी हो जाने पर भी, अगर दूसरे उपाय न किये जायें, तो संभव है कि कंगालियत जैसी की तैसी बनी रहे। इस कंगालियत के अनेक कारण हैं। आज हम उनमें से कुछ का विचार करेंगे। मज़दूरों को पूछने से पता चलता है कि जब उनका हाथ तंग होता है, वे फ़ी रुपया एक आने से लेकर चार आने तक का ब्याज हर महीने

देते हैं । यह एक रोमांचकारी बात है । जो आदमी एक बार भी इस तरह का ब्याज देना क़बूल करता है, उसका इसके चंगुल से छूटना बहुत मुश्किल है । कैसे, सो देखिये । सोलह रुपयों पर फ़ी रुपया एक आने के हिसाब से ब्याज के सोलह आने हुए । इतना ब्याज देनेवाला मूल धन के बराबर ब्याज एक बरस और चार महीने में दे चुकता है । यह ७५ टके का ब्याज हुआ । जहाँ बारह से सोलह टके का ब्याज देना भी मुश्किल माना जाता है, तहाँ ७५ टके देनेवाला टिक कैसे सकता है? फ़िर रुपये पर चार आने का ब्याज देनेवाले की तो बात ही क्या? ऐसे आदमी को सोलह रुपये पर महीने में चार रुपये देने पड़ते हैं, और चार महीनों में मूल धन के बराबर रकम दे देनी पड़ती है । यह ३०० टके का ब्याज हुआ । ऐसे लोग हमेशा कर्ज़ में डूबे रहते हैं और कभी उससे उबर नहीं सकते। ब्याज की यह मार पैग़म्बर महम्मद साहब ने बुरी तरह महसूस की थी, यही वजह है कि कुरान-ए-शरीफ़ में हमें सूद के बारे में सख्त आयतें पढ़ने को मिलती हैं । मालूम होता है कि इन्हीं कारणों से हिन्दू शास्त्रों में 'दामदुप्पट' के न्याय को स्थान मिला होगा । अगर इस लड़ाई के सिलसिले में क्या हिन्दू और क्या मुसलमान सभी मज़दूर इतनी ऊँची दर का ब्याज न देने की प्रतिज्ञा कर लें, तो उनके सिर का बहुत बड़ा बोझ उतर जाय । बारह फ़ीसदी से ज़्यादा ब्याज किसीको नहीं देना चाहिए । कोई पूछेगा कि बात तो ठीक है, लेकिन जो रक़म ब्याज पर ली जा चुकी है, वह कैसे लौटाई जाय! वह तो अब जीवन के साथ जुड़ी हुई चीज़ है । इसका अच्छे से अच्छा इलाज तो यही है कि मज़दूरों के बीच ऐसी समितियाँ खड़ी की जायें, जिनसे उन्हें परस्पर पैसे की भी मदद

मिल सके। कुछ मज़दूरों की स्थिति ऐसी भी पाई गई है कि वे चाहें तो ब्याज के बोझ तले दबे हुए अपने भाइयों को उसमें से छुड़ा सकते हैं। बाहरवाले इसमें ज़्यादा दखल नहीं दे सकते। जिसे हम पर पूरा एतबार है, वही हमारी मदद कर सकता है। कैसे भी क्यों न हो, एक बार साहस के साथ मज़दूरों को इस महादुःख से छूटना चाहिए। ब्याज की ये भारी-भारी दरें ग़रीबी का एक बहुत बड़ा कारण है। दूसरे सब शायद इतने बड़े न हों। उनका विचार आगे करेंगे।

११

ज्यों-ज्यों दिन बीतते जाते हैं, मज़दूरों को गुमराह करनेवाली पत्रिकायें भी निकलती जाती हैं। यह भी सुना गया है कि मंगलवार को लॉक आउट खतम होगा, और जो मज़दूर काम पर जायेंगे, उनसे काम लिया जायगा। इसके साथ यह भी सुनने में आया है कि पाँच या पाँच से अधिक मज़दूरों को अपने साथ लानेवाले मज़दूर को कुछ इनाम भी दिया जायगा। इन दोनों हलचलों के खिलाफ़ हमें कुछ करना नहीं है। दूसरे आदमियों को काम देकर मज़दूरों को फिरसे मिल में बुलाने का अधिकार मालिकों को है। लेकिन मज़दूरों का फ़र्ज़ क्या है? मज़दूरों ने कहा है कि २० टके का इज़ाफ़ा उनके लिए काफ़ी नहीं है। उन्होंने मालिकों को इसकी सूचना भी दी है। ३५ टके से कम इज़ाफ़ा न लेने की प्रतिज्ञा भी वे कर चुके हैं। ऐसी हालत में कोई मज़दूर अपनी टेक, अपना नाम और अपनी मर्दानगी को छोड़े बिना तबतक वापस काम पर नहीं जा सकता, जबतक उसे ३५ टके का इज़ाफ़ा न मिले। लेकिन मुमकिन है कि हरएक मज़दूर की यह टेक न हो। प्रत्येक मज़दूर ने ऐसी प्रतिज्ञा न भी की हो।

कुछ मज़दूर गुजरात के बाहर के भी हैं। मुमकिन है कि वे हमारी शाम की सभाओं में न आते हों। अगर वे भी २० टके का इज़ाफ़ा लेकर काम पर जाते हैं, तो हमें उस पर एतराज़ होना चाहिए। हमारा कर्त्तव्य सिर्फ़ इतना ही है कि हम ऐसे अज्ञान मज़दूरों का पता लगाकर उन्हें सच्ची हालत समझा दें। हममें से हरएक को याद रखना चाहिए कि हमारी ओर से इन लोगों पर भी किसी प्रकार का दबाव नहीं पड़ना चाहिए।

मंगलवार को यानी कल सुबह ७॥ बजे हम अपने रोज़ के मुकाम पर मिलेंगे। मालिकों की ओर से मिलें चलाने की जो लालच दी जा रही है, उसमें फँसने से बचने का अच्छे से अच्छा रास्ता यही है कि हरएक मज़दूर रोज़ सुबह ७॥ बजे सभा के मुक़ाम पर ख़ुद हाज़िर रहे, और जो लोग अबतक सभा में नहीं आये हैं, ऐसे अज्ञान और परदेशी मज़दूरों का पता लगाकर उन्हें सभा में आने को कहे और सभा में लावे। लालच के इन दिनों में सबके दिल में तरह-तरह के विचार उठेंगे। कामकाजी आदमी के लिए बेकार रहना बहुत दुःखदायक होता है। ऐसे सब लोगों को सभा में आने से कुछ धैर्य मिलेगा। जिन्हें अपनी शक्ति का खयाल रहता है, उनके लिए बेकारी का कोई सवाल नहीं रहता। दर असल मज़दूर इतना अधिक स्वतंत्र है कि अगर उसे अपनी दशा का ठीक-ठीक भान हो जाय, तो नौकरी के जाने से वह ज़रा भी न घबराये। धनवान के धन का अन्त हो सकता है, वह चुराया जा सकता है, बुरे कामों में खर्च होने पर देखते-देखते नष्ट हो सकता है, और कभी अन्दाज़ की भूल के कारण धनवान को अपना दिवाला भी निकालना पड़ता है। लेकिन मज़दूर का धन अखूट है, उसे कोई चुरा नहीं सकता,

और उस पर मनचाहा ब्याज हमेशा मिला करता है। उसके हाथ-पैर और मज़दूरी करने की उसकी शक्ति, उसकी एक अखूट पूँजी है। मेहनत पर जो महेनताना उसे मिलता है, वही उसका ब्याज है। यह एक सीधा-सच्चा न्याय है कि अधिक शक्ति का उपयोग करनेवाला मज़दूर आसानी से अधिक ब्याज कमा सकता है। हाँ, जो आलसी है, उसे ज़रूर भूखों मरना पड़ता है। वह निराश भी होता है। उद्योगी को एक क्षण की भी चिन्ता करने का कोई कारण नहीं रहता। मंगलवार को सुबह सब ठीक समय पर सभा में आइये। सभा में आने से आप अपनी इस स्वतंत्रता का कुछ अधिक खयाल लेकर जा सकेंगे।

१२

आज से नया अध्याय शुरू होता है। मालिकों ने लॉक आउट खत्म करने का निश्चय किया है और जो २० टके का इज़ाफ़ा लेकर काम पर जाने को तैयार हैं, उन्हें लेने की इच्छा प्रकट की है। इसलिए आज से मालिकों के लॉक आउट की जगह मज़दूरों की हड़ताल शुरू होती है। मालिकों के इस निश्चय की आम सूचना आप सबने देखी है। उसमें वे लिखते हैं कि बहुत से मज़दूर काम पर आने को तैयार हैं। मगर लॉक आउट के कारण वे काम पर आ नहीं सके थे। मज़दूरों की रोज़-रोज़ होनेवाली सभाओं और उनकी प्रतिज्ञा के साथ मालिकों को मिली हुई यह खबर मेल नहीं खाती। या तो मालिकों के पास पहुँची हुई खबर सच है, या यह सच है कि मज़दूर रोज़-रोज़ सभाओं में हाज़िर होते हैं, और वे अपनी प्रतिज्ञा से बँधे हुए हैं। प्रतिज्ञा करने से पहले मज़दूरों ने आगा-पीछा सब सोच लिया है, अतएव अब उन्हें कितनी ही लालच क्यों न दी जाय, और कैसी ही मुसीबतें क्यों न

उठानी पड़े, जब तक ३५ टके का इज़ाफ़ा नहीं मिलता, वे काम पर नहीं लौट सकते। इसीमें उनका ईमान है। अगर वचन को लाखों के धन के साथ तौला जाय, तो उसमें वचन का पलड़ा ही भारी रहेगा। हमें विश्वास है कि मज़दूर इस बात को कभी न भूलेंगे। अपने वचन पर डटे रहने के सिवा मज़दूरों के लिए उन्नति का दूसरा कोई उपाय है ही नहीं। और, हम तो मानते हैं कि अगर मिलमालिक समझें, तो उनकी उन्नति भी मज़दूरों के प्रतिज्ञा-पालन ही में है। जो अपनी टेक को निबाह नहीं सकते, उन लोगों से काम लेकर आखिर मालिक, भी कोई फ़ायदा नहीं उठा सकेंगे। धार्मिक वृत्तिवाला मनुष्य दूसरे की प्रतिज्ञा को तुड़ाने में कभी रस नहीं लेता: कभी हाथ नहीं बँटाता। लेकिन आज मालिकों के कर्त्तव्य का विचार करने की फ़ुरसत हमें नहीं है। वे अपना कर्त्तव्य समझते हैं। हम तो उनसे बिनती ही कर सकते हैं; लेकिन मज़दूरों को इस समय अपना कर्त्तव्य पूरी तरह समझ लेने की ज़रूरत है। यह समय फिर लौटकर नहीं आयेगा।

अब हम देखें कि मज़दूर अपनी प्रतिज्ञा का भंग करके क्या पा सकेंगे। आजकल हिन्दुस्तान में ईमानदार आदमी को होशियारी के साथ काम करने पर बीस-पचीस रुपये कहीं भी मिल सकते हैं। अतएव मज़दूरों की बड़ी से बड़ी हानि तो यही हो सकती है कि मालिक हमेशा के लिए उन्हें छोड़ दें, और उनको कहीं दूसरी जगह नौकरी करनी पड़े। समझदार मज़दूर को जान लेना चाहिए कि कुछ दिनों की कोशिश से वह कहीं भी नौकरी पा सकेगा। लेकिन हम मानते हैं कि मालिक इस आखिरी हद तक जाना नहीं चाहते हैं। अगर मज़दूर अपनी टेक पर डटे रहेंगे, तो कठोर से कठोर दिल भी एक दिन पिघलेगा।

मुमकिन है कि ग़ैर-गुजराती मज़दूरों को (उत्तर भारत से और दक्षिण भारत से, यानी मद्रास से आये हुए मज़दूरों को) इस लड़ाई का पूरा खयाल न हो। हम अपने सार्वजनिक कामों में हिन्दू, मुसलमान, गुजराती, मद्रासी, पंजाबी, वग़ैरा का कोई भेद नहीं रखते, न रखना चाहते हैं। हम सब एक ही हैं, अथवा एक होना चाहते हैं। अतएव गुजरात के बाहर से आये हुए इन मज़दूरों को हमें सहानुभूतिपूर्वक इस लड़ाई का मर्म समझाना चाहिए, और उनको यह जँचाना चाहिए कि हमारे साथ रहने में उनका और दूसरे सबका भी हित है।

१३

हमारे पास अफ़वाह आई है कि बहुतेरे मज़दूर काम पर जाने को तैयार हैं, लेकिन दूसरे मज़दूर उन्हें ज़ोरोज़ुल्म के साथ, मार-पीट की धमकी देकर रोके हुए हैं। हरएक मज़दूर को हमारी यह प्रतिज्ञा याद रखनी चाहिए कि अगर मज़दूर दूसरों को दबाकर या धमकाकर काम पर जाने से रोकेंगे, तो हम उनकी मदद न कर सकेंगे। इस लड़ाई में जीत उसीकी होगी, जो अपनी टेक पर अड़ा रहेगा। टेक किसीसे ज़बर्दस्ती पलवाई नहीं जा सकती। यह चीज़ ही ऐसी है कि ज़बर्दस्ती हो नहीं सकती। अपनी टेक पर क़ायम रहकर ही हम आगे बढ़ना चाहते हैं। जो आदमी मारे डर के कोई काम न करे, वह किस बल पर आगे बढ़ सकता है? उसके पास तो कुछ रहता ही नहीं। अतएव हर मज़दूर को यह याद रखना चाहिए कि वह किसी भी दूसरे मज़दूर पर किसी प्रकार का दबाव न डाले। अगर दाबादूबी से काम लिया गया तो संभव है कि सारी लड़ाई कमज़ोर पड़ जाय और एकदम बैठ जाय। मज़दूरों की लड़ाई का सारा दारोमदार

उनकी माँग पर और उनके कार्य की न्यायोचितता पर है । अगर माँग अनुचित है, तो मज़दूर जीत नहीं सकते । माँग के उचित होने पर भी अगर उसको पाने के लिए अन्याय से काम लिया जाय, झूठ बोला जाय, दंगा-फ़साद किया जाय, दूसरों को दबाया जाय, आलस्य किया जाय, और फलतः संकट सहे जायें, तो भी वे जीत नहीं सकते । किसीको न दबाना और अपने गुज़ारे के लिए आवश्यक मज़दूरी करना, ये इस लड़ाई की बहुत ही ज़रूरी शर्तें हैं ।

१४

जैसे धन धनवान का हथियार है, वैसे ही मज़दूरी मज़दूर का हथियार है । अगर धनवान अपने धन का उपयोग न करे, तो भूखों मरे । इसी तरह मज़दूर अपने धन को — मज़दूरी — को काम में न लाये, वह मज़दूरी न करे, तो उसे भूखों मरना पड़े । जो मज़दूरी नहीं करता, वह मज़दूर कैसा ? जो मज़दूर मजूरी करने में शरमाता है, उसे खाने का कोई अधिकार ही नहीं । इसलिए अगर मज़दूर इस महान् लड़ाई में अपनी प्रतिज्ञा का पालन करना चाहते हैं, तो उन्हें मज़दूरी करना सीख लेना होगा । चन्दा इकट्ठा करके, और बेकार रहकर जो लोग चन्दे के पैसे से अपना पेट भरते हैं, उन्हें जीतने का कोई हक़ नहीं । मज़दूर यह लड़ाई अपनी टेक के लिए लड़ रहे हैं । कहना होगा कि जो बिना काम किये खाना चाहते हैं, वे नहीं जानते कि टेक क्या चीज़ है । जो हयादार हैं, और जिन्हें अपनी इज्ज़त प्यारी है, वेही टेक निबाहते हैं । जो सार्वजनिक चन्दों की रक़म से बिना हाथ-पैर हिलाये जीना चाहते हैं, उन्हें हयादार कौन कहेगा ? इसलिए हमारा फ़र्ज़ है कि हम

किसी न किसी तरह की मज़दूरी करके अपना निर्वाह करें। मज़दूर का मज़दूरी से जी चुराना, ऐसा ही है, जैसा शकर का मिठास छोड़ देना।

यह लड़ाई सिर्फ़ ३५ टके की बढ़ोतरी पाने के लिए नहीं है, बल्कि यह साबित करने के लिए है कि मज़दूर अपने हक़ के लिए मुसीबतें उठाने को तैयार हैं। यह लड़ाई अपनी टेक पर क़ायम रहने की लड़ाई है। हम अपनी तरक्क़ी के ख़याल से, यानी अच्छे बनने के लिए, इसे चला रहे हैं। अगर हम सार्वजनिक धन का दुरुपयोग करते हैं, तो अच्छे बनने के बदले बिगड़ते हैं। अतएव हम किसी भी तरह सोचें, नतीजा यही निकलेगा कि हमें मज़दूरी करके ही अपना पोषण करना है। शीरीं के ख़ातिर फ़रहाद ने पत्थर तोड़े थे। मज़दूरों की शीरीं उनकी टेक है, उसके लिए वे पत्थर क्यों न फोड़ें? सत्य के लिए हरिश्चन्द्र बिके। अगर मज़दूरी करने में दुःख है, तो क्या अपने सत्य के लिए मज़दूर उतना दुःख न सहेंगे? टेक के ख़ातिर हज़रत इमाम हसन और हुसैन ने बड़ी-बड़ी तकलीफ़ें उठाईं। हम अपनी टेक निबाहने के लिए क्यों न मरने को तैयार रहें? हमें घर बैठे पैसे मिलें, और उन पर हम लड़ें, तो यह कहना ही ग़लत होगा कि हम लड़े। इसलिए हमें उम्मीद है कि हरएक मज़दूर अपनी टेक की रक्षा के लिए मज़दूरी करके अपना पेट पालेगा और दृढ़ रहेगा। अगर यह लड़ाई देर तक चली, तो उसका कारण हमारी कमज़ोरी ही होगी। जबतक मिलमालिकों को यह ख़याल रहेगा कि मज़दूर दूसरी मज़दूरी नहीं करेंगे और आख़िर हार जायेंगे, तबतक वे पसीजेंगे भी नहीं और विरोध करते रहेंगे। जबतक उन्हें यह विश्वास न हो जायगा कि

मज़दूर अपनी टेक कभी छोड़ेंगे ही नहीं, तबतक उन्हें दया नहीं आयेगी और वे अपने मुनाफ़े से हाथ धोकर भी विरोधी बने रहेंगे। जिस दिन उन्हें विश्वास हो जायगा कि मज़दूर अपनी टेक किसी भी दशा में नहीं छोड़ेंगे, उस दिन वे ज़रूर पसीजेंगे और तब वे मज़दूरों का स्वागत करेंगे। आज तो उनका यह खयाल है कि मज़दूर दूसरी मज़दूरी करेंगे ही नहीं, और आज ही कल में हाथ टेक देंगे। अगर मज़दूर दूसरों के पैसे पर अपने गुज़ारे का दम भरेंगे, तो मालिक सोच लेंगे कि यह पैसा तो किसी न किसी दिन खत्म होने ही वाला है। इसलिए वे मज़दूरों को दाद न देंगे। जिन मज़दूरों के पास खानेपीने का जुगाड़ नहीं है, वे अगर मज़दूरी करने लग जायेंगे, तो मालिक भी समझ लेंगे कि जल्दी से ३५ टके का इज़ाफ़ा न दिया, तो वे मज़दूरों को हाथ से खो बैठेंगे। इस तरह लड़ाई को बढ़ाने या घटानेवाले हमीं हैं। इस समय ज़्यादा दुःख सहकर हम जल्दी छुटकारा पा सकते हैं। अगर दुःख नहीं सहेंगे, तो लड़ाई ज़रूर आगे बढ़ेगी। हमें आशा है कि इन सब बातों को सोचकर जो आज कच्चे पड़े हैं, वे झट पक्के बन जायेंगे।

खास सूचना

कुछ मज़दूरों का यह खयाल हो गया है कि जो कमज़ोर पड़ गये हैं, उनको शहज़ोर बनाने के लिए समझाया नहीं जा सकता। यह खयाल बिलकुल अनुचित है। जो किसी भी कारण से कच्चे पड़ गये हैं, उनको विनयपूर्वक समझाना हममें से हरएक का काम है। जो लड़ाई से वाकिफ़ नहीं हैं, उन्हें समझाना भी हमारा काम है। हमारा कहना तो यह है कि हमें किसीको धमकाकर, झूठ बोलकर, मारकर या दूसरा कोई दबाव डालकर

रोकना नहीं है । जो समझाने पर भी न समझें और काम पर जाना चाहें, वे भले जायँ । हमें उससे बिलकुल निडर रहना है । इस तरह जबतक एक भी आदमी बाहर रहेगा, हम कभी उसका साथ नहीं छोड़ेंगे ।

१८

गांधीजी की प्रतिज्ञा का हेतु और अर्थ समझ लेना ज़रूरी है। पहली याद रखने योग्य बात यह है कि उन्होंने मालिकों पर असर डालने के लिए अपना व्रत शुरू नहीं किया है । अगर इस हेतु से व्रत लिया जाय, तो उससे हमारी लड़ाई को धक्का पहुँचे और हमारी बदनामी हो । मालिकों से हम इन्साफ़ चाहते हैं, महज़ दया नहीं चाहते । जितनी दया चाहते हैं, उतनी मज़दूरों को मिले तो अच्छा । हम यह मानें कि मज़दूरों पर दया करना मालिकों का फ़र्ज़ है । लेकिन गांधीजी पर दया करके वे मज़दूरों को ३५ टका इज़ाफ़ा दें, और मज़दूर उसे लें, तो उसमें हमारी ही हँसी होगी । मज़दूर ऐसा इज़ाफ़ा ले नहीं सकते । यदि गांधीजी मालिकों के अथवा सर्वसाधारण के साथ के अपने संबंध का ऐसा उपयोग करें, तो कहा जायगा कि उन्होंने अपनी स्थिति का दुरुपयोग किया है । इससे गांधीजी की प्रतिष्ठा घटेगी । गांधीजी के उपवास का मज़दूरों की तनख्वाह के साथ क्या सम्बन्ध हो सकता है ? अगर मज़दूरों को ३५ टका पाने का हक़ न हो, और ५० आदमी मालिकों के घर जाकर अनशन करें, तो भी मालिक उन्हें ३५ टका क्योंकर दें ? अगर इस तरह हक़ हासिल करने का रिवाज चल पड़े, तो जन-समाज का काम चलना क़रीब-क़रीब असंभव हो जाय । गांधीजी के इस उपवास पर मिल-मालिक न तो ध्यान दे सकते हैं, न उन्हें ध्यान देना चाहिए ।

साथ ही यह भी नहीं हो सकता कि गांधीजी के ऐसे कार्य का प्रभाव मालिकों पर बिलकुल ही न पड़े ।

जिस हद तक यह प्रभाव पड़ेगा, उसका उतना ही दुःख हमें रहेगा । किन्तु यदि गांधीजी के उपवास से दूसरे महत्त्वपूर्ण परिणाम निकलते हों, तो हम उनका त्याग न करें ।

जिस हेतु की सिद्धि के लिए उपवास शुरू किया गया है, उस पर भी थोड़ा विचार कर लें । गांधीजी ने महसूस किया कि मज़दूरों के मन में प्रतिज्ञा का महत्त्व कम होने लगा है । अपनी कल्पित भूख के डर से उनमें से कुछ प्रतिज्ञा तोड़ने को तैयार हो गये थे । दस हज़ार आदमियों का अपनी प्रतिज्ञा से मुँह मोड़ना एक असह्य-सी बात है । प्रतिज्ञा का पालन न करने से आदमी कमज़ोर पड़ता है, और अन्त में अपनी मनुष्यता से हाथ धो बैठता है । इसलिए आज प्रतिज्ञा-पालन के काम में लोगों की भरसक मदद करना, यह हम सबका एक धर्म बन गया है । गांधीजी ने सोचा कि अगर वे उपवास करेंगे, तो यह साबित हो सकेगा कि वे स्वयं प्रतिज्ञा को कितना महत्त्व देते हैं । फिर मज़दूर भूखों मरने की बात कर रहे थे । गांधीजी का कथन है कि भूखों मरकर भी प्रतिज्ञा पालनी चाहिए । इसका पालन उन्हें तो सचमुच करना ही चाहिए । और यह तभी सच हो सकता है, जब वे ख़ुद भूखों मरने को तैयार हों । मज़दूर कहने लगे कि वे मज़दूरी नहीं करेंगे, फिर भी उन्हें पैसे की मदद की ज़रूरत तो है । गांधीजी को यह चीज़ बहुत भयावनी मालूम हुई । मज़दूरों के ऐसे व्यवहार से देश में जो अव्यवस्था उत्पन्न होगी, उसका कोई पार ही न रहेगा । मज़दूरी करने में जो कष्ट है, उसे सह लेने की बात लोगों को प्रभावशाली ढंग से समझाने का गांधीजी के पास एक ही तरीक़ा

हो सकता है। यह कि वे खुद कष्ट उठावें। वे खुद मज़दूरी तो करते थे, लेकिन उतना काफ़ी न था। उपवास को उन्होंने कई दृष्टियों से अर्थसाधक समझा और शुरू किया। अब यह उपवास तभी छूट सकता है, जब या तो मज़दूरों को ३५ टके का इज़ाफ़ा मिल जाय, या वे अपनी प्रतिज्ञा से टल जायँ। परिणाम वही हुआ, जो सोचा था। जो लोग प्रतिज्ञा लेने के वक़्त हाज़िर थे, उन्होंने वह देखा भी। मज़दूर जागे, उन्होंने मज़दूरी करना शुरू किया, उनका धर्म और उनका ईमान बचा।

मज़दूर अब यह समझ चुके हैं कि अगर वे अपनी प्रतिज्ञा पर क़ायम रहेंगे तो उन्हें इन्साफ़ मिलेगा। महात्मा गांधीजी की प्रतिज्ञा से उनका बल बढ़ा है। लेकिन जूझना तो उन्हें अपनी ही ताक़त पर है। मज़दूरों का उद्धार मज़दूरों के हाथ में है।

१६

श्री० शंकरलाल बैंकर की पत्रिका

आप लोगों के लिए मैं यह पहली ही पत्रिका लिख रहा हूँ। इसलिए मुझे यह तो कह ही देना चाहिए कि इसके लिए मेरा अधिकार नाम-मात्र का ही है। मैंने स्वयं मज़दूरी नहीं की। मज़दूरों को जैसे दुःख सहने पड़ते हैं, वैसे मैंने नहीं सहे; इसी तरह उन दुःखों को समझकर उन्हें दूर करने के लिए भी मैं कुछ कर नहीं सकता। अतएव इस अवसर पर जो कुछ भी सलाह देने की ज़रूरत मुझे मालूम हुई है, वह देते हुए मुझे संकोच तो होता ही है। यद्यपि अबतक मैंने आपके लिए कुछ किया नहीं है, तो भी आगे अपनी शक्ति के अनुसार आपके लिए कुछ न कुछ करने की मेरी तीव्र इच्छा है, और इस इच्छा के कारण ही मैं यह लिखता हूँ।

आज से दो दिन पहले हमारी स्थिति कुछ हद तक चिन्तातुर हो उठी थी। आपमें से कुछ भाई तंगी का अनुभव करने लगे थे; और उनके लिए यह डर पैदा हो गया था कि कहीं वे इस तंगी से मुक्त होने के लिए गाँधीजी के आग्रह के अनुसार मज़दूरी करने के बदले, प्रतिज्ञा तोड़कर काम पर न चले जायँ। लेकिन आज वह स्थिति रही नहीं है। गांधीजी की प्रतिज्ञा के कारण हमारे जड़ हृदयों में चैतन्य आ गया है, और हमें पता चला है कि हमारी प्रतिज्ञा कितनी गंभीर है। 'मर जायँगे, पर टेक न छोड़ेंगे', यह बात अब महज़ सभाओं में बोलने की नहीं रही, बल्कि करके दिखाने की है, इसका विश्वास अब हमें हो गया है। इस बदली हुई परिस्थिति के प्रमाण-स्वरूप तंगदस्त भाइयों ने ख़ुशी-ख़ुशी मज़दूरी करना शुरू किया है, यही नहीं, बल्कि जिनकी स्थिति अच्छी है, उन्होंने दूसरों के सामने अपना उदाहरण रखकर और अपनी मज़दूरी से मिलनेवाली मेहनताने की रक़म दूसरों की मदद में खर्च करके हममें से फूट की संभावना को हमेशा के लिए नष्ट कर दिया है। लेकिन यह काफ़ी नहीं है। गांधीजी की प्रतिज्ञा के कारण हमारे सिर बड़ी भारी ज़िम्मेदारी आ पड़ी है। यदि इस ज़िम्मेदारी को हम अच्छी तरह समझते हैं, तो हमें इस लड़ाई को जल्दी से जल्दी खत्म करने के लिए जी-जान से मेहनत करनी चाहिए; और जिन-जिन उपायों से हम अपनी टेक पर क़ायम रहकर लड़ाई को समेट सकते हों, उन सब उपायों का प्रयोग तुरन्त करना चाहिए। हमारी टेक ३५ टका लेने की है। और, हम जानते हैं कि मिलमालिकों के लिए आर्थिक दृष्टि से ये ३५ टका देना मुश्किल नहीं है। लेकिन ३५ टका देने में जो डर उन्हें लगता है, वह यह है कि उससे मज़दूर

सिर पर चढ़ बैठेंगे, उद्धत बन जायँगे, बात-बात में बहाने बना कर रूठेंगे और छोटी-छोटी बातों पर हड़ताल करके उद्योग का नाश करेंगे। मुझे तो इस भय का कोई कारण नहीं मालूम होता। जिस उद्योग से मज़दूरों को रोज़ी मिलती है, उसके नाश की इच्छा वे कभी कर ही नहीं सकते। फिर भी यदि मज़दूर न्याय-अन्याय का विचार किये बिना मर्यादा छोड़कर चलें, तो जिस अनिष्ट का उल्लेख ऊपर किया है, वह हुए बिना न रहे। यदि हम इस बुरे परिणाम से बचना चाहते हों, तो हमें बाक़ायदा ईमानदारी के साथ काम करने का निश्चय करना चाहिए। हमें तय कर लेना चाहिए कि हम कोई अनुचित माँग पेश नहीं करेंगे, और न्याय के लिए भी हड़ताल-जैसी चीज़ का सहारा तबतक न लेंगे, जबतक दूसरे उपाय समाप्त न हो जायँ। लेकिन खाली ऐसा निश्चय कर लेने से भी हमारा काम नहीं बनता। हमें मालिकों से मिलना होगा, अपने इस निश्चय की बात उनसे कहनी होगी, और अपने लिए उनके मन में विश्वास उत्पन्न करना होगा; जिस भय के कारण वे हमें ३५ टका देने से हिचकिचाते हैं, उनका वह भय दूर करना होगा। कारीगरों को मेरी यह आग्रह-भरी सलाह है कि वे इसके लिए आवश्यक कार्रवाई जल्दी ही करें।

१७
दोनों की जीत

पिछली पत्रिकाओं से हम यह जान चुके हैं कि सत्याग्रह में दोनों की जीत होती है। जो सत्य के लिए लड़ा और जिसने सत्य को प्राप्त किया, वह तो जीता ही है, लेकिन जिसने सत्य का विरोध किया और अन्त में सत्य को पहचाना और दिया वह भी जीता ही माना जाता है। इस विचार के अनुसार चूँकि

मज़दूरों की प्रतिज्ञा पली है, इसलिए विजय दोनों पक्षों की हुई है। मालिकों ने प्रतिज्ञा की थी कि वे २० टके से ज़्यादा नहीं देंगे; हमने उनकी इस प्रतिज्ञा का भी मान रक्खा है। मतलब यह कि दोनों की लाज रही है। अब हम देखें कि समझौता क्या हुआ है:

१. मज़दूर कल, यानी तारीख २० को काम पर जायँ। ता० २० के दिन उन्हें ३५ टका इज़ाफ़ा मिले, और ता० २१ के दिन २० टका।

२. ता० २२ से आगे ३५ टके तक पंच जो फ़ैसला देंगे, उसके अनुसार इज़ाफ़ा दिया जाय।

३. गुजरात के साक्षर शिरोमणि, साधुपुरुष, गुजरात कॉलेज के अध्यापक और वाइस प्रिन्सपाल श्री आनन्दशंकर ध्रुव एम० ए०, एल एल० बी० पंच नियुक्त किये जायँ।

४. पंच महोदय का फ़ैसला तीन महीने के अन्दर प्रकट हो जाय। इस बीच मज़दूरों को २७॥ टका इज़ाफ़ा दिया जाय। यानी आधी रक़म मज़दूर छोड़ें और आधी मालिक छोड़ें।

५. पंच फ़ैसले के अनुसार २७॥ टके पर घट-बढ़ लेनी-देनी मानी जाय। यानी अगर पंच २७॥ टके से ज़्यादा का फ़ैसला दें, तो मालिक उतना इज़ाफ़ा मज़दूरों को मुजरे दें; और अगर २७॥ से कम का फ़ैसला दें, तो मज़दूर उतनी रक़म मालिकों को मुजरे दें।

इसमें दो तत्त्वों का निश्चय हुआ है। एक तो मज़दूरों की प्रतिज्ञा क़ायम रही; दूसरे, यह तय हुआ कि दोनों पक्षों के बीच किसी महत्त्व के प्रश्न पर झगड़ा खड़ा हो, तो उसका निर्णय हड़ताल द्वारा न करके पंच द्वारा किया जाय। समझौते में यह

शर्त तो नहीं है कि आगे दोनों पक्ष अपने आपसी झगड़ों का फ़ैसला पंच के मार्फ़त ही करायेंगे। लेकिन चूँकि समझौते में पंच को मान्य रक्खा गया है, इसलिए माना जा सकता है कि ऐसे मौक़ों पर आगे भी पंचों की नियुक्ति होगी। कोई यह न माने कि मामूली-मामूली बातों के लिए पंच मुकर्रर किये जायेंगे। मालिकों और मज़दूरों के बीच खड़े होनेवाले मतभेदों को मिटाने के लिए हमेशा किसी तीसरे पक्ष को बीच में पड़ना पड़े, यह दोनों के लिए शर्मनाक़ है। मालिक तो इसे बरदाश्त कर ही नहीं सकते। वे इस शर्त पर अपना धन्धा कभी न चलायेंगे। दुनिया सदा से लक्ष्मी का सम्मान करती आई है। और लक्ष्मी सदा सम्मान पायेगी। अतएव अगर मज़दूर ज़रा-ज़रासी बातों के लिए मालिकों को हैरान करेंगे, तो मालिकों से उनका कोई सम्बन्ध न रह सकेगा। हम मानते हैं कि मज़दूर ऐसा कभी करेंगे ही नहीं। हम यह कह देना ज़रूरी समझते हैं कि मज़दूर कभी बिना सोचे हड़ताल न करें। अगर वे हमसे बिना पूछे हड़ताल करेंगे, तो हम उनकी मदद न कर सकेंगे। पूछा गया है कि एक दिन ३५ टका लेकर बैठ जाने में प्रतिज्ञा का पालन क्या हुआ? यह तो बालकों को बहलाने-फुसलाने जैसी बात हुई। कुछ समझौतों में ऐसा हुआ है। लेकिन इसमें ऐसा नहीं हुआ। हमने जानबूझकर, समय का विचार करके, एक ही दिन के ३५ टका मंज़ूर किये हैं। हम ३५ टका लिये बिना काम पर नहीं जायेंगे, इसके दो अर्थ होते हैं। एक तो यह कि हम किसी भी दशा में ३५ टके से कम इज़ाफ़ा मंज़ूर नहीं करेंगे; दूसरा, यह कि हम ३५ टका लेकर काम पर जायेंगे, फिर वह एक दिन के लिए भी मिले तो काफ़ी है। जिसने निश्चय किया हो कि हमेशा

के लिए ३५ टका माँगने में शुद्ध न्याय है, और उतना पाने के लिए जिसके अन्दर अनन्त शौर्य हो, वह तो तभी अपनी प्रतिज्ञा सफल हुई समझेगा, जब उसे ३५ टका हमेशा के लिए मिलेंगे। लेकिन हमारा निश्चय ऐसा नहीं था। हम पंच से न्याय कराने को हमेशा तैयार थे। ३५ टके का निश्चय हमने एक तर्फ़ा विचार करके किया था। ३५ टके की सलाह देने से पहले हम मालिकों की बातें उन्हींसे सुन लेना चाहते थे। दुर्भाग्यवश वैसा न हो सका। इसलिए हमने जितना हो सका, उतना उनके पक्ष का विचार करके ३५ टके की सलाह दी। लेकिन हम यह नहीं कह सकते कि हमने जो ३५ टके ठहराये हैं, वे सही हैं। हमने ऐसा कभी कहा भी नहीं। अगर मालिक हमें हमारी भूल बतावें, तो ज़रूर ही हम कम इज़ाफ़ा लेने की सलाह दें। यानी अगर पंच को कम इज़ाफ़ा देना ठीक माळूम पड़े और उतना हम मंज़ूर कर लें, तो उससे हमारी टेक को ज़रा भी आँच नहीं आती। हमने पंच के उसूल को हमेशा से माना है। हमें आशा है कि ३५ टका ठहराने में हमने कोई भूल नहीं की है। इस लिए हमारा खयाल है कि उतने मिलेंगे। लेकिन अगर हमें अपनी भूल माळूम हो जाय, तो हम कम टके लेकर भी ख़ुश रहें।

तीन महीनों की मुद्दत ख़ास तौर पर हमारी ओर से ही माँगी गई है। मालिक तो पंद्रह दिन की मुद्दत मंज़ूर करने को तैयार थे। लेकिन हमें अपनी माँग को सही साबित करने के लिए बंबई में थोड़ी जाँच-पड़ताल करने की ज़रूरत है। पंच महोदय को यहाँ की स्थिति समझाने और मज़दूरों की रहन-सहन की वाक़फ़ियत देने की भी ज़रूरत है। जबतक वे इन सब बातों को न समझ लें, उन्हें परिस्थिति का पूरा खयाल नहीं आ सकता।

इस तरह का सच्चा-पक्का क़ाम कुछ दिनों में पूरा नहीं हो सकता। फिर भी जहाँतक हो सकेगा काम जल्दी ही पूरा किया जायगा।

कुछ भाइयों ने लॉक आउट के दिनों की तनख्वाह लेने की इच्छा प्रकट की है। हमें कहना चाहिए कि हम यह तनख्वाह माँग नहीं सकते। जब हमने २० टका लेने से इनकार किया, तो लॉक आउट या हड़ताल में से किसी एक की ज़रूरत खड़ी हुई। हमने २२ दिन तक जो तकलीफ़ उठाई, वह हमारे लिए कर्त्तव्यरूप थी और उसमें हमारा स्वार्थ था। इस दुःख की क़ीमत हमने प्राप्त कर ली है। यह समझौता ही वह क़ीमत है। अब हम लॉक आउट की तनख्वाह कैसे माँग सकते हैं? लॉक आउट का पगार माँगने का मतलब यह होगा कि हम मालिकों के पैसे से लड़ाई लड़ें। मज़दूरों के लिए यह एक शरमानेवाला विचार है। लड़वैये अपनी ताक़त पर ही लड़ सकते हैं। दूसरे, मालिक मज़दूरों को तनख्वाह दे चुके हैं। अब तो यह भी कहा जा सकता है कि मज़दूर नये सिरे से नौकरी शुरू करते हैं। इन सब बातों का विचार करते हुए मज़दूरों को लॉक आउट के समय की तनख्वाह लेने का खयाल छोड़ देना चाहिए।

मज़दूरों को तनख्वाह २० दिन बाद मिलेगी। इस बीच मज़दूर क्या करें? बहुतों की ज़ेबें बिलकुल खाली होंगी। जिन्हें तनख्वाह मिलने के दिन से पहले मदद की ज़रूरत हो, उन्हें चाहिए कि वे मालिकों से नम्रतापूर्वक विनती करें; हमें विश्वास है कि मालिक उनकी इस प्रार्थना पर कुछ सहूलियत कर देंगे।

मज़दूरों को याद रहे कि अबसे आगे की उनकी हालत का आधार उनके काम पर रहेगा। यदि वे सच्ची नीयत के साथ, नम्रता और उत्साहपूर्वक नौकरी करेंगे, तो मालिकों की मेहरबानी

पा सकेंगे और उनसे बहुत कुछ मदद ले सकेंगे। यह सोचना कि सब कुछ हमारे मार्फ़त ही मिल सकेगा, ग़लत होगा। किसी संकट विशेष के अवसर पर मज़दूरों की सेवा करने के लिए हम तैयार हैं। लेकिन जहांतक हो सके, मालिकों को माँ-बाप समझकर उन्हीं-से सब कुछ लेने में मज़दूरों का हित है।

अब शान्ति की आवश्यकता है। छोटी-मोटी तकलीफ़ें सहन कर लेनी हैं।

अगर आप इजाज़त देंगे, तो आपमें से जिन्हें कुछ बुरी आदतें पड़ी हुई हैं, उनकी उन आदतों को सुधारने में कुछ मदद करने का हमारा इरादा है। हम आपको और आपके बालकों को तालीम देने की भी उम्मीद रखते हैं। हम चाहते हैं आपकी नैतिकता बढ़े, आपकी और आपके बच्चों की तन्दुरुस्ती बढ़े, और आपकी आर्थिक स्थिति सुधरे। अगर आप इजाज़त देंगे, तो हम इसके लिए आवश्यक काम शुरू करेंगे।

मज़दूरों की बड़ी से बड़ी जीत तो यह है कि भगवान ने—खुदा ने—उनकी टेक या लाज रख ली है। जिसका ईमान रह गया, उसका सब कुछ रह गया। ईमान जाय और दुनिया का राज भी मिले, तो वह धूल के बराबर है।

परिशिष्ट

मज़दूर पक्ष की दलील

श्री० आनन्दशंकरभाई,

अहमदाबाद की मिलों के बुनाई-विभाग के कारीगरों को उनकी तनख्वाह में जो इज़ाफ़ा मिलना चाहिए, उसकी जाँच के सिलसिले में मैं आपकी सेवा में नीचे लिखी हक़ीक़त पेश करने की इजाज़त चाहता हूँ।

बुनाई-विभाग के कारीगरों की तनख्वाह में जो बढ़ोतरी होनी चाहिए, उसका निर्णय करने में नीचे लिखी दो बातों का खास तौर पर विचार करने की ज़रूरत है: (१) कारीगरों को सादा किन्तु सन्तोषकारक जीवन बिता सकने के लिए क्या तनख्वाह मिलनी चाहिए? यानी उनकी तनख्वाह में कितना इज़ाफ़ा होना चाहिए? (२) मिलें यह इज़ाफ़ा दे सकती हैं या नहीं? अगर पूरा-पूरा नहीं दे सकतीं, तो कितना दे सकती हैं?

१. कारीगरों को कितना इज़ाफ़ा मिलना चाहिए?

इस सवाल के सिलसिले में हम पहले ही यह बता देना चाहते हैं कि कारीगरों की रहन-सहन की मौजूदा हालत सन्तोष-जनक नहीं है; लेकिन उसे सुधारने का थोड़ा भी विचार किये बिना, जो हालत आज है उसीको क़ायम रखना चाहें, तो भी महँगाई के कारण कारीगरों को जुलाई के वेतन की दरों पर कम से कम ५० टका वृद्धि मिलनी चाहिए; और अगर मौजूदा

हालत को क़ायम न रखकर उसे सुधारना चाहें – यानी यह चाहें कि कारीगर अधिक स्वस्थ, सुघड़, शिक्षित और सुखी बनें – तब तो महँगाई के इस भत्ते के सिवा उनकी तनख्वाह में विशेष रूप से स्थायी वृद्धि होनी चाहिए। और अगर यह न हो, तो मिलों की तरफ़ से मज़दूरों के लिए हवादार घरों, रात्रिशालाओं, वाचनालयों, अस्पतालों और क्लबों वगैरा की आवश्यक सहूलियतों का प्रबन्ध होना चाहिए।

नीचे लिखे विवरण से आपको विश्वास हो सकेगा कि महँगाई के कारण कारीगरों को उनके जुलाई के पगार पर कम से कम ५० टका इज़ाफ़ा मिलना ज़रूरी है:

कारीगरों को मिलनेवाले इज़ाफ़े का हिसाब सन्, १९१७ के जुलाई महीने में उन्हें मिले हुए वेतन पर किया जाता है, और भाईश्री अंबालाल सेठ की तरफ़ से यह कहा गया है कि उस महीने में कारीगरों को औसतन रु० २२) मिले थे। अब कारीगरों के उसी महीने के खर्च के ब्यौरे की जाँच करने से मालूम होता है कि उस समय में भी रु० २२) उनके गुज़ारे के लिए काफ़ी न थे। उनके उस समय के आय-व्यय की तफ़सील में उतरने से पहले यह बता देना ज़रूरी है कि अधिकांश कारीगरों के परिवार संयुक्त और बड़े हैं, और वे छ:-सात या उससे भी अधिक व्यक्तियों के होते हैं। लेकिन ऐसे परिवारों की आय-व्यय की छानबीन करने से पहले कारीगरों की रहन-सहन को ठीक से समझने के लिए माँ, बाप, लड़का और लड़की, यों चार व्यक्तियों के एक काल्पनिक परिवार के किफ़ायतभरे खर्च का ब्यौरा नीचे दिया है:

बुनाई-विभाग का कारीगर: दो संचे चलानेवाला मुसलमान।

परिवार : व्यक्ति ४ । १ पुरुष, १ स्त्री, १ लड़का, एक लड़की । कमानेवाला : पुरुष १ ।

मासिक खर्च

	रु०आ०पा०		रु०आ०पा०
चावल १ मन*	२-१२-०	घी, गुड़, शकर (बार-त्यौहार पर)	१—०—०
दाल ०॥ मन	१—३—०	चाय—दूध	२—०—०
गेहूँ २ मन	४—८—०	बालों में डालने का तेल	०—३—०
माँस ४ सेर*	०—८—०	साबुन	०—४—०
ईंधन ४ मन	१—४—०	हजामत	०—६—०
	१०—३—०	पान—बीड़ी	१—८—०
साग-सब्ज़ी रोज़ ०—१—०	१-१४-०	किराया	१—८—०
तेल — मसाला	१—०—०	किरासिन तीन बोतल	०—६—०
			२०—४—०

वार्षिक खर्च

	रु० आ० पा०		रु० आ० पा०
पतलून नग ४	४—०—०	बूट जोड़ ४	१२—०—०
कोट ,, ३	३—१२—०	छाता नग १	१—२—०
कुर्ता ,, ४	३—४—०	टोपी ,, १	२—६—०
कमीज़ ,, २	१—१४—०	सुरवाल ,, ४	२—०—०
साफा ,, १	१—१५—०	कुर्ता ,, ४	३—०—०

* नोट — इस हिसाब में सब जगह ४० तोले का सेर और ४० पौंड का मन माना गया है । गुजरात में यही प्रचलित है ।

अनुवादक

	रु०आ०पा०		रु०आ०पा०
कोट नग ४	२—४—०	जूती	०—८—०
ओढ़नी	२—४—०	चूड़ी	२—०—०
पेशवाज नग १	४—८—०	साड़ियाँ नग ३	१–१४—०
इजार ,, ४	३—०—०		
कुर्त्ती ,, ४	३—०—०		५१–१३—०

वार्षिक खर्च रु० ५१–१३–० ÷ १२ = मासिक खर्च रु० ४–५-० अर्थात् कुल मासिक खर्च रु० २०–४–० + ४-५–० = रु० २४–९–० ।

इस हिसाब में कुछ बातों का विचार नहीं किया गया है। लेकिन चूँकि वे बहुत ही महत्त्व की हैं, इसलिए उनकी ओर ध्यान आकर्षित करना ज़रूरी समझता हूँ ।

१. **कारीगर की तनख़्वाह :** ऊपर कारीगर की मासिक आय २२) मानी गई है । परन्तु कारीगर हमेशा इतना कमा नहीं सकता । उसे दिन भर जैसी कड़ी मेहनत करनी पड़ती है, वैसी वह साल के बारहों महीने नहीं कर सकता । कमज़ोरी, बीमारी और कभी बेकारी के कारण भी दिन टूटते हैं, और औसतन उसका काम साल में ११ महीने का ही हो पाता है । इसलिए दर असल तो उसकी आमदनी मासिक रु० २०) की ही मानी जानी चाहिए ।

२. **ब्याज :** ज़्यादातर कारीगर क़र्ज़ में डूबे हुए हैं । उन सबको बहुत ज़्यादा ब्याज देना पड़ता है । ऊपर के हिसाब में ब्याज की यह रक़म गिनी नहीं गई है ।

मुसीबत के मारे मज़दूर जब किसी साहूकार या पठान के पंजे में फँस जाते हैं, तो उनकी हालत कितनी दर्दनाक हो उठती

है, इसका यथार्थ वर्णन किया नहीं जा सकता। लेकिन इस संबंध में एक जानने योग्य उदाहरण यहाँ देता हूँ। प्रेमदरवाज़े के बाहर जुगलदास की चाल में झगड़ू शेख नाम का एक बूढ़ा मुसलमान कारीगर रहता है। उसकी स्त्री फ़ातिमा के पास सीने की एक मशीन थी, जिस पर काम करके वह अपने खाविन्द की आमदनी में थोड़ा इज़ाफ़ा कर लिया करती थी। लेकिन तंगी की वजह से उसे अपनी मशीनपर कुछ रुपया उधार लेना पड़ा और मशीन रहन रखनी पड़ी। मशीन की क़ीमत रु० ८०) थी, लेकिन उस पर मगन दलसुख नाम के साहूकार ने रु० ७) उधार दिये और दुअन्नी रुपये का ब्याज ठहराया। लेकिन फ़ातिमा न तो ब्याज दे सकी, न रुपये लौटा सकी; और अभी तो साल पूरा भी नहीं हुआ है, मगर मगनभाई ने ब्याज वग़ैरा जोड़कर उसके नाम २६) का क़र्ज़ निकाला है। ऐसे दूसरे अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं; जिनसे यही साबित होता है कि तंगी की वजह से क़र्ज़ में फँसे हुए कारीगरों की हालत अत्यन्त दयाजनक है, और उनको उससे ऊपर उठाने के लिए संगठित प्रयत्नों की आवश्यकता है। इस संबंध में आपसे यही प्रार्थना है कि आप मिल-मालिकों का ध्यान इस ओर खींचेंगे और उचित प्रबन्ध के लिए उन्हें प्रेरित करेंगे।

३. **दवा :** प्रसूति या बीमारी के अवसरों पर कारीगरों को दवा वग़ैरा के लिए खर्च करना पड़ता है। कभी-कभी मिल में काम करते हुए जो चोट वग़ैरा लग जाती है, उसके इलाज का खर्च भी अक़सर उन्हींके सिर पड़ता है। ऊपर के हिसाब में इस खर्च की रक़म भी शामिल नहीं है।

४. **शादी-मौत :** परिवार में सगाई, ब्याह या मौत के अवसरों पर जो खर्च होता है, पर्व और त्यौहार के अवसरों पर दान-धर्म और दावत वग़ैरा में जो खर्च होता है, और रिश्तेदारों के यहाँ या जात-बिरादरी में शादी वग़ैरा के मौक़ों पर राह-रस्म का जो खर्च होता है, वह भी ऊपर के हिसाब में आ सकता है। लेकिन इस हिसाब में उसे भी गिना नहीं है।

५. **बीमा :** इस खर्च के सिवा, हरएक कारीगर को अपने और अपने परिवार के हित की दृष्टि से दुर्घटनाओं का और जीवन का बीमा कराना ही चाहिए, और उसे ऐसी सहूलियत मिलनी चाहिए, जिससे वह बीमे का प्रीमियम भर सके।

६. **शिक्षा :** कारीगरों को अपने लड़कों और लड़कियों की पढ़ाई का भी प्रबन्ध करना चाहिए। कुछ कारीगर अपने बालकों को स्कूल में भेजते हैं, परन्तु उनकी संख्या बहुत कम है। ऊपर के हिसाब में इसका खर्च भी शामिल नहीं किया है।

अब इन अतिरिक्त बातों का विचार न भी करें, तो भी ऊपर दिये गये हिसाब के अनुसार एक छोटे परिवार का जुलाई महीने का खर्च रु० २४) माना जाना चाहिए; जब कि उसकी आमदनी तो सिर्फ़ रु० २२) ही बताई गई है। अतएव महँगी के पहले भी उसका निर्वाह तो मुश्किल ही से हो पाता होगा।

लेकिन कारीगरों के ऐसे छोटे परिवार तो अपेक्षाकृत कम ही हैं; आम तौर पर अधिकतर परिवार तो, जैसा कि उपर कहा जा चुका है, छः-सात व्यक्तियों के ही होते हैं। अतएव अब यह देखने की ज़रूरत है कि ऐसे परिवार का खर्च क्या होता होगा।

बुनाई-विभाग का कारीगर: २ संचे चलानेवाला: जात–मुसलमान। परिवार में व्यक्तियों की संख्या ६: १ पुरुष, २ स्त्रियाँ (१ बुढ़िया), ३ बालक। कमानेवाला: १ पुरुष।

मासिक खर्च

	रु० आ० पा०		रु०आ०पा०
चावल १॥ मन	४–०–०	चाय-दूध	२–०–०
दाल ०॥ मन	१-१२-०	सिर में डालने का तेल	०–६–०
गेहूँ ३ मन	६-१२-०	साबुन	०–४–०
मांस ४ शेर	०–८–०	हजामत	० ८–०
ईंधन ६ मन	१-१४-०	पान-बीड़ी	२–०–०
	१४-१४-०	किराया	२–०–०
		किरासिन: ३ बोतल	०–६–०
साग-सब्ज़ी रोज़ ०–१–६	२-१२-०	मासिक	२७-१४-०
तेल-मसाला	१–४–०	कपड़े-लत्ते वग़ैरा	६–०–०
घी, गुड़, शकर (बार-त्यौहार पर)	१–८–०	कुल खर्च	३३-१४-०

इस हिसाब पर से कारीगरों की विडम्बना का कुछ पता चल सकेगा। प्लेग बोनस (जब क़रीब ५० से लेकर ७० टके तक मिलता था, कारीगरों की आमदनी रु० २२) के बदले रु० ३३) से ३७) तक पहुँचती थी) से पहले कारीगर को १२ घण्टों की मज़दूरी के बाद भी अपने परिवार के भरण-पोषण के लिए काफ़ी नहीं मिलता था, जिसके फलस्वरूप उन्हें क़र्ज़ लेना और पंसारी तथा साहूकार का आश्रित बनना पड़ता था।

अब मौजूदा स्थिति को समझने के लिए हम यह देखें कि आज की हालत में कारीगरों का खर्च क्या है। किन्तु इस सम्बन्ध के हिसाब का विचार करने से पहले यह देखना ज़रूरी है कि उनकी आवश्यकता की चीज़ों के भाव में कितना फ़र्क़ पड़ा है।

निर्ख़ अनाज

अनाज	जुलाई			अप्रैल २०			महँगी
	रु० आ० पा०			रु० आ० पा०			फ़ीसदी
गेहूँ	१—०—०	सेर	१८	१—०—०	सेर	१०	८०
बाजरी	१—०—०	,,	२०	१—०—०	,,	१०	१००
चावल	१—०—०	,,	१५	१—०—०	,,	१०	५०
दाल	१—०—०	,,	१७	१—०—०	,,	१५	१३
मांस	०—२—०	,,	१	०—३—०	,,		५०
ईंधन	०—५—०	मन	१	०—८—०	मन	१	६०
तेल	०—३—६	सेर	१	०—४—०	सेर	१	१४
गुड़	०—२—०	सेर	१	०—२—०	सेर	१	—
घी	१—०—०	सेर	१।≈	—	सेर	१।	१०
शकर	०—३—०	सेर	१	०—३—०	सेर	१	—
दूध	०—१—३	सेर	१	०—१—६	सेर	१	१२
नमक	०—०—६	सेर	१	०—१—०	सेर	१	१००
सिर में डालने का तेल	०—३—३	सेर	१	०—४—०	सेर	१	२३
किरासिन	०—१—९	बोतल	१	०—४—०	बोतल	१	१००

कपड़े की दरें

किस्म कपड़ा	जुलाई			अप्रैल, २०			महँगी
	रु० आ० पा०			रु० आ० पा०			फ़ीसदी
सेनो (पतलून के लिए)	०—५—०	गज़	१	०—८—०	गज़	१	६०
मलमल (कुर्ते के लिए)	०—५—०	गज़	१	०—७—०	गज़	१	४०
चेक (कमीज़ के लिए)	०—४—०	गज़	१	०—६—०	गज़	१	५०
बनियान	०—५—०	नग	१	०—६—०	नग	१	२०
टोपी	०—२—६	नग	१	०—५—०	नग	१	१००
साफा	१—५—०	नग	१	१-१२-०	नग	१	४०
छतरी	१—२—०	नग	१	१—८—०	नग	१	३३
साड़ी	१—०—०	नग	१	१—८—०	नग	१	५०
ओढ़नी	०-१२-०	नग	१	१—४—०	नग	१	६६
छींट (घाघरे के लिए)	०—६—०	गज़	१	०—९—०	गज़	१	५०
नैनसुख (पेशवाज)	३—८—०	थान		५—०—०	थान		४२
छींट (इजार)	०—६—०	गज़	१	०-१०-०	गज़	१	६७
जाफर (चोली के लिए)	०—४—६	गज़	१	०—६—०	गज़	१	३३
ओढनी	०-१०-०	गज़	१	१—०—०	गज़	१	६०
छींट (घाघरी के लिए)	०-१२-०	गज़	१	१—०—०	गज़	१	३३

इन दरों के हिसाब से ऊपर लिखे अनुसार चार और छः आदमियों के परिवार का खर्च इस प्रकार होगा :

४ आदमियों का परिवार

मासिक खर्च				वार्षिक खर्च		
			रु० आ० पा०			रु० आ० पा०
चावल	१	मन	४—०—०	पतलून	नग ४	५—८—०
दाल	०॥	मन	१—५—०	कोट	नग ३	५—४—०

			रु० आ० पा०				रु० आ० पा०
गेहूँ	२	मन	८–०–०	कुर्ते	नग	४	४–४–०
मांस	४	सेर	८-१२-०	कमीज़	नग	२	२–८–०
ईंधन	४	मन	२–०–०	साफा	नग	१	१-१२-०
			१६–१–०	बूट	जोड़ी	४	१२–०–०
साग-सब्ज़ी रोज़ का				छाता	नग	१	१–८–०
		०–१–०	१-१४-०	टोपी	नग	१	०–५–०
तेल-मसाला			१–०–०	सुरवाल	नग	४	३–०–०
घी, गुड़, शकर			१–०–०	कुर्ते	नग	४	३-१२-०
चाय			२–०–०	कोट	नग	२	३–०–०
दूध			०–०–०	चादर	नग	३	३-१२-०
सिर में डालने का तेल			०–३–०	पेशवाज	नग	१	६–०–०
साबुन			०–४–०	इजार	नग	४	५–०–०
हजामत			०–६–०	कुर्ती	नग	४	६–०–०
पान-बीड़ी			१–८–०	जूती			०–८–०
किराया			२–०–०	चूड़ी			२–०–०
किरासिन			०-१२-०	ओढ़नी	नग	३	३–०–०
			२७–०–०				६९–१–०

÷ १२ = मासिक ५–१२–१

रु० २७–०–० + ५–१२–१ = कुल मासिक खर्च रु० ३२–१२–१

६ आदमियों के परिवार का खर्च

			रु०आ०पा०		रु० आ पा०
चावल	१॥	मन	६–०–०	मसाला	२-१२-०
दाल	०॥	मन	२–०–०	तेल	१–४–०

			रु० आ० पा०		रु० आ० पा०
गेहूँ	३	मन	१२—०—०	घी, गुड़, शक्कर	१—८—०
मांस	४	सेर	०-१२-०	चाय	२—०—०
ईंधन	६	मन	३—०—०	सिर में डालने का तेल	०—६—०
			२३—१२—०	हजामत	०—८—०
साग-सब्ज़ी रोज़			०—१—६	किराया	२—०—०
साबुन			०—४—०		३७—२—०
पान-बीड़ी			२—०—०	+ मासिक कपड़े-लत्ते	
किरासिन			०-१२-०	वग़ैरा	७—०—०
				= कुल मासिक खर्च	४४—२—०

इस तरह आज की घड़ी में चार आदमियों का मासिक खर्च रु० ३२) और छः का रु० ४४) होता है; अगर मज़दूरों की आमदनी इतनी करनी हो, तो उन्हें जुलाई की दर पर कम से कम ५० टका और अधिक से अधिक सौ टका इज़ाफ़ा मिलना चाहिए।

२. मिलें कितने टके दे सकती हैं?

ऊपर दी गई हक़ीकतों से पता चलेगा कि कारीगरों को उनके गुज़ारे के लिए महँगाई के इस ज़माने में जुलाई महीने की तनख्वाह पर ५० फ़ीसदी इज़ाफ़ा मिलना चाहिए। यानी जुलाई महीने की उनकी आमदनी रु० २२) मानी जाय, तो इस समय उन्हें कम से कम रुपये ३३) मिलने चाहिएँ। लेकिन यह भी एक सोचने की बात है कि मिलें इतना इज़ाफ़ा दे सकती हैं या नहीं। क्योंकि जिस उद्योग की बदौलत कारीगरों को उनकी रोज़ी मिलती है, कारीगर उससे इतनी मज़दूरी तो नहीं माँग सकते, कि जिससे उस उद्योग में कुछ दम ही न रह जाय। लेकिन नीचे की

हक़ीक़तों से पता चलेगा कि आज की हालत में ५० टके की यह माँग किसी भी तरह ज़्यादा नहीं है।

जुलाई महीने में सूत का भाव फ़ी रतल १२ आना और उसके साथ बुनाई का ख़र्च फ़ी रतल छः आना था, अर्थात् एक रतल सूत का कपड़ा एक रुपया दो आने में तैयार होता था। इस कपड़े का बाज़ार भाव फ़ी रतल रु० १–५–० था। यानी मिलों को हर रतल पर ०–३–० का मुनाफ़ा रहता था; और फ़ी कर्घा १० रतल सूत के हिसाब से दो कर्घों पर उन्हें रु० ३–१२–० का मुनाफ़ा मिलता था। इस अर्से में प्लेग के कारण कारीगरों को ५० से लेकर ७० टके तक का इज़ाफ़ा मिला है। रु० २२) पर इसका हिसाब बैठायें तो रोज़ के छः आने का हिसाब पड़ता है। और चूँकि दो कर्घों पर रोज़ का मुनाफ़ा रु० ३–१२–० होता था, इसलिए हर रोज़ मज़दूरों को छः आने देने के बाद भी रु० ३–६–० का मुनाफ़ा बच रहता था।

मिलों की यह हालत आज क़ायम ही नहीं है, बल्कि वह बहुत सुधरी भी है। आज सूत का भाव फ़ी रतल रु० १–४–० है, और उस पर ०–८–० का बुनाई-ख़र्च पड़ता है। यानी १ रतल सूत के कपड़े की लागत रु० १–१२–० पड़ती है। इस कपड़े का बाज़ारभाव आज रु० २–४–० है। अर्थात् मिलों को फ़ी रतल ०–८–० का मुनाफ़ा रहता है। मान लीजिये कि एक कर्घे पर रोज़ाना १०) रतल कपड़ा तैयार होता हो, तो दो कर्घों पर रु० १०) का मुनाफ़ा हुआ। जब प्लेग के दिनों में रु० ३–१२–० के मुनाफ़े में से कारीगरों को ६ आने का इज़ाफ़ा दिया जा सका, तो यह नहीं कहा जा सकता कि आज रु० १०) के मुनाफ़े में से ६ आने देना मुश्किल है।

मिलों की मौजूदा हालत बहुत अच्छी है। इसका एक सबूत इस बात में है कि कुछ मिल-एजण्टों ने अपने कमीशन की दर में परिवर्तन किया है। पुराने तरीक़े पर एजण्टों को फ़ी रतल रु० ०-०-३ कमीशन मिलता था, उसके बदले अब उन्होंने ३॥ टका कमीशन लेना शुरू किया है। हिसाब लगाने से यह पहले की अपेक्षा चौगुना होता है। क्योंकि अगर एक कर्घे की रोज़ाना पैदावार १६ रतल मानें, तो पहले की दरों के अनुसार एजण्टों को १६ पैसे यानी ४ आने मिलते थे। परन्तु ३॥ टके के हिसाब से सोलह रतल के रु० १-१२-० लेखे रु० २८ होते हैं, जिनपर कमीशन रु० १) के क़रीब होता है। अगर मिलों को आज ग़ैरमामूली मुनाफ़ा न मिलता होता, तो न एजण्ट इतना कमीशन माँगते, और न भागीदार इतना देना मंजूर करते।

उपर दी गई हक़ीक़तों से आपको यह विश्वास हो सकेगा कि महँगी के कारण कारीगरों को कम से कम ५० टका इज़ाफ़े की ज़रूरत है, और जब कि मिलें हर रोज़ दो कर्घों पर रु० १०) कमाती हैं, उनके लिए इतना इज़ाफ़ा देना मुश्किल नहीं होना चाहिए। इस पर यह पूछा जा सकता है कि फिर गांधीजी ने ३५ टके का इज़ाफ़ा मुनासिब क्यों समझा? इसका जवाब सिर्फ़ यही है कि पहले पंचनामे की एक शर्त यह थी कि अहमदाबाद के बुनाई-विभाग के कारीगरों को बंबई की मिल के कारीगरों से ज़्यादा न मिलना चाहिए। बंबई की मिलों में इस संबंध की जाँच करने पर अलग-अलग चार मिलों की ओर से उनके कारीगरों को मिलनेवाली तनख्वाह के नीचे लिखें आँकड़े प्राप्त हुए थे:

(१) रु० ३२-३-० से ३४-८-०

(२) रु० ३० (चार दिन हड़ताल रही)

(३) रु० ३० से रु० ४४
(४) रु० ४२

इनमें कम से कम ३०) की रक़म को लेने पर भी ४० टके का इज़ाफ़ा उचित माना जा सकता है। किन्तु इस खयाल से कि कहीं मिलों का बोझ ज़्यादा न बढ़ जाय, ३५ टका ही तय किया गया था। और मैं विश्वास-पूर्वक कह सकता हूँ कि इसमें से न्यायतः एक टका भी कम नहीं हो सकता।

मज़दूरों की पगार में बढ़ोतरी करने के बारे में होनेवाली जाँच के सिलसिले में आज तो मैं इतनी ही हक़ीक़त पेश कर सका हूँ। मैंने इसकी नक़ल गांधीजी के पास भी भेजी है। अगर उन्होंने ज़रूरत समझी, तो वे इसमें कुछ बढ़ायेंगे।

शंकरलाल घेलाभाई बैंकर
का सविनय वन्देमातरम्

२

मिल-एजण्टों का वक्तव्य

इस मामले में मज़दूरों के पक्ष में मि० बैंकर की सही से पेश हुई हक़ीक़त हमने पढ़ी है।

हम यह कहना चाहते हैं कि मि० बैंकर के वक्तव्य में प्रो० ध्रुव की सलाह माँगते हुए, जो बातें कही गई हैं, उन्हें छोड़कर जहाँ-जहाँ दूसरी हक़ीक़तें पेश की गई हैं, वे बेमौजूँ हैं, और इस-लिए ध्यान देने लायक नहीं हैं। मि० बैंकर की इस कोशिश को देखकर हमें बहुत ही आश्चर्य होता है। हमारा खयाल है कि इसमें उनका मक़सद पंचों को भुलावे में डालने का रहा है।

उनकी यह कोशिश अन्यायपूर्ण और क़ानून के ख़िलाफ़ है। इस मामले में जो मुद्दे सलाह के लिए पेश किये गये हैं, उनके संबंध की वक्तव्यगत बातों पर हमारा जवाब इस प्रकार है:

अ (१) मि॰ बैंकर द्वारा पेश की गई सारी हक़ीक़तें एक बिलकुल ग़लत उसूल पर रची गई हैं। उनकी तमाम दलीलें इस उसूल पर बनी हैं कि सभी मिलें भूतदया और परोपकार के विचार से चलाई जाती हैं, और उनका उद्देश्य पूँजीपतियों और मज़दूरों के बीच समानता स्थापित करना है। हम कहा चाहते हैं कि ये उसूल बिलकुल ग़लत हैं। सच पूछा जाय तो मिलें मालिकों की अपनी निजी सम्पत्ति है। मिलें चलाने का असली और सचा हेतु मुनाफ़ा कमाना है। इस हेतु को ध्यान में रखकर ही मिलों में मज़दूरों को काम दिया जाता है। इसलिए मज़दूरों की कुशलता को ध्यान में रखते हुए उन्हें जिन शर्तों पर जो काम सौंपा जाता है, उसका सारा दारोमदार Supply and Demand अर्थात् पूर्ति और माँग की नीति पर रहता है, और वही होना भी चाहिए। हम यह कहा चाहते हैं कि सारी दुनिया में सभी जगह इस नीति से काम होता है। जहाँ तक हम जानते हैं, कहीं भी पूँजीपतियों और मज़दूरों का आपसी सम्बन्ध मि॰ बैंकर के वक्तव्य में सूचित नीति के अनुसार निश्चित नहीं हुआ है; और स्पष्ट है कि बुद्धिमानी भी इसीमें है। उनके द्वारा सूचित नीति का स्वरूप स्वयं असंभव, असाध्य, और स्वप्न तुल्य है। कुछ हद तक वह 'युटोपिया' की चीज़ है। वह इस संसार में, अथवा इस देश या शहर के लिए व्यावहारिक नहीं।

(२) दूसरे, उनका यह वक्तव्य ऐसे ग़लत तर्क पर रचा गया है कि उसे देखकर निराशा होती है। उदाहरणार्थ:

१. एजण्टों के कमीशन की वृद्धि

सभी जानते हैं कि अहमदाबाद शहर में मिल के संचालकों और एजण्टों को विधिवत् कमीशन मिलता है । एक तरीक़ा यह है कि एक रतल तैयार माल के पीछे तीन पाई का कमीशन दिया जाता है । कई ज़गह यही तरीक़ा चालू है । दूसरे तरीक़े में बिके हुए माल की क़ीमत पर ३ से ४ सैकड़ा कमीशन मिलता है । दर असल पहले इन दोनों तरीक़ों से बहुत अच्छी तरह काम चला था । क्योंकि जहाँ तक हिसाब का संबंध है, इन दोनों तरीक़ों से मिलनेवाले कमीशन में बहुत थोड़ा फ़र्क़ रहता था । पिछले वर्षों में तो इन दोनों तरीक़ों से कमीशन की रक़म सरीखी ही मिलती थी । लेकिन लड़ाई शुरू हो जाने के बाद एक तो महीन कपड़ा तैयार करने की ज़रूरत के कारण और दूसरे भाव बढ़ जाने के कारण एजण्टों को पौण्ड के हिसाब से कमीशन बराबर कम मिलने लगा और साथ ही भागीदारों को मुनाफ़ा ज्यादा मिलने लगा । इससे एजण्टों का नुकसान होने लगा । इसीलिए दूसरे तरीक़े से क़मीशन देने का रिवाज चला है । फिर भी कम या ज्यादा कमीशन देने का अधिकार भागीदारों के हाथ में है, क्योंकि इससे उन्हींके मुनाफ़े में घट-बढ़ होती है । इस मुद्दे का मौजूदा सवाल से कोई सम्बन्ध नहीं है ।

२. मज़दूरों के लिए स्कूल, अस्पताल, रात के क्लब, बीमा-फण्ड वग़ैरा का प्रबन्ध करने के बारे में

ये सभी सहूलियतें बहुत ही अच्छी हैं, लेकिन देखना यह है कि इन्हें व्यावहारिक रूप दिया जा सकता है या नहीं । ये सहूलियतें धनवानों और मध्यम श्रेणी के लोगों को भी नहीं मिलतीं ।

मिल-मज़दूरों के लिए तो ये अचरज की चीज़ें हैं। फिर इनमें से कई बातों के लिए तो सरकार और म्युनिसिपैलिटी का ध्यान खींचने की ज़रूरत है; क्योंकि इस दिशा में वही कुछ काम कर सकते हैं। इस मुकदमे के सिलसिले में इन सहूलियतों पर ज़ोर देना अन्यायपूर्ण और अयथार्थ है। इन सब कामों का सुन्दर श्रीगणेश और प्रबन्ध किया जाय, तो इन सवालों को जल्दी से जल्दी अमली रूप देने से बढ़कर स्वागत योग्य और कोई चीज़ हमें नज़र नहीं आती; उस दशा में इनके लिए जो आवश्यक खर्च होगा उसकी पूर्ति में हम अपनी ओर से उचित मदद पूरी-पूरी ख़ुशी के साथ देंगे।

३. प्लेग के कारण दिया गया इज़ाफ़ा

यह इज़ाफ़ा एक ख़ास समय के लिए ही दिया गया था। अब चूँकि प्लेग नहीं रहा है, इसलिए हर वक्त या हमेशा के लिए उस पर भार देना अनुचित ही कहा जायगा।

४. बंबई के मज़दूर और उनको मिलनेवाले पगार की तुलना

इस तुलना में नीचे लिखी बातों का विचार नहीं किया गया है, इसलिए यह बिलकुल ग़लत है।

१. बंबई में मकान किराये सहित सभी खर्च ज़्यादा है।

२. वहाँ के मज़दूर ज़्यादा होशियार और निपुण हैं।

३. इसी कारण बंबई की मिलों में अधिक सुन्दर और ख़ास ख़ूबीवाली बुनाई का काम हो सकता है।

४. वहाँ के मज़दूर प्रायः एक ही जगह स्थायी रूप से काम करते हैं।

५. वहाँ का कोई भी मज़दूर जब बिना नोटिस दिये या बिना छुट्टी लिये काम पर हाज़िर नहीं रहता, तो उसे उस समय का पगार नहीं दिया जाता। (अहमदाबाद में हमेशा नोटिस देने का रिवाज है।)

इन महत्त्व के भेदों का विचार किये बिना तुलना करने से ग़लती होने का संभव है। ऐसा करना न्याय विरुद्ध और अवास्तविक है। फिर प्रगतिशील बंबई में भी अभीतक बीमा-फण्ड या रात्रि-क्लब वग़ैरा का अभाव ही है। ऊपर की इस तुलना में इस हक़ीक़त का भी खयाल नहीं रक्खा गया है कि बंबई सरकार ने और रेलवे कंपनियों ने अपने नौकरों की तनख्वाहें बढ़ाई हैं।

ब. मि० बैंकर के शेष वक्तव्य में इस एक मुद्दे को लेकर कि मज़दूरों के प्रति सहानुभूति दिखानी चाहिए, उनके पक्ष को सबल बनाने का प्रयत्न किया गया है। लेकिन इसमें भी कुछ बातें ग़लत तरीक़े से पेश की गई हैं।

१. हमें विश्वास है कि वक्तव्य की नीचे लिखी बातें सही नहीं हैं:

अ. साधारण मज़दूर के परिवार में एक पुरुष, उसकी स्त्री और तीन चार बालक होते हैं।

पूरी जाँच-पड़ताल के बाद हम इस निर्णय पर पहुँचे हैं कि औसतन एक मज़दूर के परिवार में माता-पिता के सिवा अकसर एक ही बालक होता है, और बहुत ही कम घरों में दो बालक होते हैं। अतएव स्पष्ट है कि उनके हिसाब का आधार ग़लत है।

आ. सारे परिवार का पोषण एक ही पुरुष करता है।

इस संबंध में भी यह जानी हुई बात है कि कई घरों के लड़के काम करते हैं। इसलिए इस मुद्दे पर भी ज़ोर देने की

ज़रूरत नहीं । यह तो ज़ाहिर है कि मिलों में बहुत से लड़के काम पर आते हैं । और कहीं-कहीं तो औरतें भी काम करती हैं । इसलिए ध्यान देने की बात तो यह है कि मिल-मज़दूरों के परिवारों की कमाई बहुत ही ज़्यादा है ।

इ. मासिक खर्च का आँकड़ा भी बहुत ही ज़्यादा बताया गया है ।

ई. मज़दूरों को अपनी शक्ति से बाहर बहुत ही ज़्यादा काम करना पड़ता है ।

यह चीज़ बिलकुल ग़लत है । किसी भी मिल में जाकर देखने से पता चलेगा कि बीड़ी पीने और पानी पीने के कमरों में तथा मिल के अहातों में बहुतेरे मज़दूर मटरगश्ती करते और समय खोते हैं । हमारी यह राय बनी है कि अगर मज़दूर अपने काम पर एकाग्र रहें तो उन्हें जो आमदनी हो, उसके मुक़ाबले में आज ऊपर की इन आदतों के कारण उन्हें बहुत ही कम मिलता हैं; यही नहीं, बल्कि इसकी वजह से मिलों को भी कई तरह का नुकसान होता है । मसलन्, माल कम तैयार होता है, और अकसर ग्राहकों को और कर्घों को बन्द करने की ज़रूरत पड़ती है । आलस्य में समय गँवाने की इस आदत का मज़दूरों में न रहना हर तरह इष्ट है । हमने बार-बार इसे सुधारने की कोशिश की है, लेकिन कामयाबी नहीं मिली । मज़दूर वर्ग का केस पेश करने और उसके साथ हमदर्दी दिखाने से मज़दूरों को जो लाभ होता है, उसके मुक़ाबले अगर मज़दूर अपने काम का अधिक खयाल रक्खें तो उनकी आमदनी बहुत ही बढ़ सकती है, और हालत सुधर सकती है; यही नहीं, बल्कि मिलों को भी बहुत मुनाफ़ा हो सकता है । इसमें मज़दूरों और पूँजीपतियों, दोनों

को परस्पर लाभ है। इस मामले में हमारे मज़दूरों को अपने बंबई के मज़दूर भाइयों का अनुकरण करना चाहिए।

उ. दूसरी ध्यान देने योग्य बात यह है कि मज़दूर बार-बार नौकरी बदलते हैं। मिलों में होनेवाली इस फेर-बदली का पत्रक देखने से पता चलेगा कि मज़दूर स्थिर रह नहीं सकते। इसके कारण मज़दूरों का और मिलों का बहुत ही नुक़सान होता है।

ऊ. इस संबंध में हमारा नम्र निवेदन यह है कि आप केलिको मिल में बने माल का पत्रक देखने की कृपा करें। उस से साफ़ पता चलता है कि प्लेग का भत्ता देने अथवा पगार बढ़ाने से भी मिलों की कमाई में कोई अच्छी तरक़्क़ी नहीं हुई है; बल्कि वह बहुत ही कम हो गई है। मज़दूरों को ज़्यादा कमाने के जो मौक़े दिये गये हैं, उनका नतीजा यह हुआ है कि माल की पैदावार घटी है; इस स्थिति में इसके कारण लाभ होने के बदले हमें व्यर्थ का बहुत ज़्यादा नुकसान हुआ है। उसी पत्रक से दूसरी बात यह भी मालूम हो सकेगी, कि जिस इज़ाफ़े की आज मज़दूर माँग कर रहे हैं, वह इज़ाफ़ा और उससे भी ज़्यादा आमदनी वे पा सके होते, लेकिन जो मौक़े उन्हें दिये गये थे, उनसे उन लोगों ने लाभ नहीं उठाया। हम इसका कारण यह समझे हैं कि मज़दूरों की आदतों में और उनकी रहन-सहन में आलस्य आदि की प्रधानता है। वे कुछ खास आमदनी और कुछ खास सहूलियतों को पाकर ही सन्तुष्ट हो जाते हैं, और मुहर्रम वग़ैरा त्यौहार के दिनों को छोड़कर बाक़ी के सब दिनों में ज़्यादा कमाने के जो मौक़े उन्हें दिये जाते हैं, उनसे वे लाभ नहीं उठाते। इस संबंध में मज़दूरों की कार्यशैली को देखकर हमारी

जो मज़बूत राय बनी है, वह यह है कि अहमदाबाद में मज़दूरों को ज़्यादा मज़दूरी देने से उनकी वास्तविक मासिक आमदनी में बहुत ज़्यादा वृद्धि नहीं होती। इसलिए हमारी सूचना यह है कि इस संबंध में मज़दूरों की आदतें सुधारने की खास ज़रूरत है।

(२) ऊपर कही गई बातों से यह तो साफ़ है कि मि० बैंकर के वक्तव्य की खास विचारने योग्य बातें अब बहुत कम रही हैं। हिन्दुस्तान की आम जनता के सभी अंगों की और साथ ही मज़दूर वर्ग की हालत को सुधारने और उत्तम बनाने की खास ज़रूरत है। हम यह भी मानते हैं कि यह काम बहुत जल्द होना चाहिए, लेकिन जैसा कि मि० बैंकर सोचते हैं, उतने थोड़े समय में न मनुष्य पूरी तरह सुधर सकते हैं, न उनके रिवाज़ ही सुधर सकते हैं। 'युटोपिया' एक दिन, एक वर्ष, या एक पीढ़ी में सिद्ध नहीं हो सकता। मि० बैंकर ने मज़दूरों के लिए जिस इज़ाफ़े की माँग पेश की है, वह मज़दूरों को सहज ही मिल सकता है, बशर्तें कि वे स्वयं मेहनत करें और अपने काम में अधिक नियमित और कम आलसी रहें। यह उपाय उनके अपने हाथ में है। दयाभाव के कारण अच्छी तरह या हमेशा के लिए उन्हें यह लाभ मिल नहीं सकता। अपनी योग्यता और उद्योगप्रियता के बल पर ही वे अधिक अच्छी कमाई कर सकेंगे। इस संबंध में हमारा निवेदन यह है कि मि० बैंकर और उनके मित्र अपने उत्साह का उपयोग मज़दूरों को उनकी बुरी आदतों का हानि-लाभ समझाने में करेंगे तो बहुत ही फ़ायदा होगा। इससे जिन लोगों का पक्ष लेकर वे खड़े हुए हैं, उनको भी वे बेहद लाभ पहुँचा सकेंगे।

(३) हम पंच महोदय का ध्यान इस ओर खींचने की अनुमति चाहते हैं कि फ़ैसले के सिलसिले में जिस इज़ाफ़े का निर्णय दिया जाय, वह तभी तक के लिए हो, जबतक आज की परिस्थिति क़ायम रहे। यह सच है कि आजकल महँगाई है, लेकिन उसका कारण मौजूदा लड़ाई है। अच्छे साल आने और लड़ाई बंद होने पर महँगाई न रह जायगी; और उसके साथ ही मिलों को जो मुनाफ़ा आज हो रहा है, वह बहुत ही कम हो जायगा। बहुत मुमकिन है कि बढ़े हुए करों के कारण, और लंकाशायर के साथ पुनः बहुत ही ज़ोर से शुरू होनेवाली होड़ के कारण मिलों की हालत खराब हो जाय। इन दो बातों का मिल-उद्योग पर क्या प्रभाव पड़ेगा, आज उस पर तर्क करना व्यर्थ है; लेकिन पहले से यह समझ रखना अधिक लाभदायक होगा कि जो मुनाफ़ा आज मिलता है, वह आगे चलकर नहीं मिलेगा। बंग-भंग के अच्छे सालों में सन्, १९०० से १९०९ तक मिलों को बहुत ही अच्छा मुनाफ़ा मिला था। लेकिन १९०९ से लड़ाई शुरू होने तक के समय में मिलों को बहुत ही नाजुक हालत में से गुज़रना पड़ा। उस समय सचमुच ही कई मिलों का दिवाला निकल गया था। इसलिए हम सच्चे दिल से यह आशा रखते हैं कि पूँजीपतियों और मज़दूरों के सभी मित्र इस संभाव्य (और सच्ची) स्थिति का पूरी चिन्ता के साथ विचार करेंगे।

क. अब सोचने की सिर्फ़ एक बात यह रह जाती है कि मज़दूरों को क्या इज़ाफ़ा दिया जाय। उन्होंने अपनी ओर से ३५ टके की माँग पेश की है। हम बीस फ़ीसदी इज़ाफ़ा दे सके हैं। हमारा निवेदन यह है कि ऊपर बताई गई सब परिस्थितियों का और निकट भविष्य के समय का ध्यानपूर्वक विचार करने के

बाद जो इज़ाफ़ा हमने दिया है, वह वाजिब है। सच पूछा जाय तो वह भी ज़रूरत से ज़्यादा है, फिर भी आज की नाज़ुक हालत को ध्यान में रखते हुए हमने इज़ाफ़ा देना उचित समझा है। हम मानते हैं कि अगर अहमदाबाद में प्लेग न फैला होता, तो मज़दूर इस इज़ाफ़े से सन्तुष्ट रहते। इस समय तो अहमदाबाद में प्लेग है ही नहीं, अतएव जिन परिस्थितियों का विचार करके उन्हें प्लेग का भत्ता दिया गया था, उसपर मौजूदा सवाल के सिलसिले में कुछ भी न कहा जाना चाहिए। अगर मज़दूर ज़्यादा उद्योगी बनें और बार-बार नौकरी बदलने की अपनी आदत को छोड़कर एक ही जगह स्थायी रूप से काम करें, तो अधिक नहीं तो जितना इज़ाफ़ा आज वे माँगते हैं, उतना तो वे ख़ुद कमा सकते हैं। वे ज़्यादा काम करेंगे, तो हम उनको ज़्यादा पगार बहुत ही ख़ुशी के साथ देंगे। उनके मौजूदा मित्रों से उन्हें जितना लाभ मिलेगा, उससे अधिक लाभ उनके अपने उद्योग के कारण उनका भी होगा और हमारा भी होगा।

अतएव अन्त में हमारा निवेदन है कि जो इज़ाफ़ा हम देना चाहते हैं, वह न्याययुक्त है।

गोरधनदास ई० पटेल
पेस्तनशा न० वकील
जॉइन्ट ऑनररी सेक्रेटरी
मिलएजण्ट ग्रूप

३

पंच का निर्णय

पिछली सर्दियों में अहमदाबाद के मिलमालिक मंडल और बुनाई विभाग के कारीगरों के दरम्यान कारीगरों के पगार के सम्बन्ध

में विवाद खड़ा हो गया था, जिसके फलस्वरूप हड़ताल और लॉक आउट — ताले बाहर — की खेदजनक स्थिति उत्पन्न हुई थी। ता० २० मार्च, १९१८ के दिन दोनों पक्षों ने पंच का काम मुझे सौंपा और हड़ताल खुली। इसके बाद पंच का काम शुरू हुआ। मैंने दोनों पक्षों को लिखा कि वे अपने-अपने वक्तव्य लिखकर भेजें। तदनुसार अनिवार्य अड़चनों के कारण मिल-मालिक-मंडल का कोई वक्तव्य तीन महीनों के अन्दर मुझे मिला नहीं। एक पक्ष के वक्तव्य से संतुष्ट रहकर फ़ैसला देना मुझे उचित नहीं मालूम हुआ, इसलिए मैंने उन्हें सूचित किया कि पंच के अधिकार को समाप्त करके दोनों पक्ष आपस में मिलकर समझौता कर लें, और इस काम में दोनों पक्षों के मित्र के नाते मेरी सहायता की आवश्यकता हो, तो मैं उसके लिए तैयार हूँ। किन्तु दोनों दलों की ओर से यह कहा गया कि ऐसा हो नहीं सकता। उन्होंने यह भी कहा कि दोनों ने मिलकर पंच के काम की मुद्दत बढ़ाने का निश्चय किया है। इसलिए मैंने पंच का काम ज़ारी रक्खा। ता० २८ जून को मुझे मिल-मालिक-मण्डल का वक्तव्य मिला। उसके कारण कुछ महत्त्व के प्रश्न खड़े हुए, जिनका ख़ुलासा मैंने दोनों पक्षों की ओर से माँगा था। ता० ३ जुलाई तक कारीगर पक्ष की ओर से इस संबंध में कुछ भी लिखकर नहीं आया। अधिकतर जिन ख़ुलासों और हक़ीक़तों की मुझे ज़रूरत थी, वह मिलमालिकों की ओर से मिलने को थी; उनकी ओर से एक 'खानगी' सूचना के साथ कुछ हक़ीक़त पेश की गई है। लेकिन उससे मेरे सभी सवालों का जवाब नहीं मिलता, और जो मिलता है, वह भी अपूर्ण रूप में मिलता है: और, कुछ हक़ीक़तों का उपयोग तो तभी हो सकता है, जब वे कई मिलों से इकट्ठा करके भेजी जायें।

परन्तु मालिकों की ओर से यह कहा गया है कि आज इस तरह की हक़ीक़त इकट्ठा करना मुमकिन नहीं है । ऐसी दशा में मैं यह निर्णय नहीं कर सकता कि दोनों पक्षों के इस झगड़े में **वास्तविक न्याय** क्या है । लेकिन चूँकि इस समय मिलमालिक विशेष हक़ीक़तें दे नहीं सकते, और ग़रीब कारीगरों को पंच का निर्णय जल्दी ही मिल जाना इष्ट है, इसलिए मुझे **व्यावहारिक न्याय** अर्थात् फ़ैसले से काम लेना पड़ता है । पंच के फ़ैसले की राह न देखते हुए कुदरती तौर पर मिलमालिकों और कारीगरों के बीच प्रस्तुत प्रश्न को लेकर जो वास्तविक स्थिति उत्पन्न हो गई है, उसमें से मुझे इस व्यावहारिक न्याय का सूत्र मिल जाता है । कारीगरों की ओर से प्राप्त हक़ीक़त से पता चलता है कि आजकल अधिकांश मिलों में ३५ फ़ीसदी इज़ाफ़ा दिया जा चुका है और कुछ मिलों में तो इज़ाफ़े की यह रक़म ५० फ़ीसदी तक पहुँच चुकी है । अतएव इस विवाद से सम्बन्ध रखनेवाले शेष समय के लिए ३५ फ़ीसदी का इज़ाफा देना उचित है । इसलिए पंच के नाते प्राप्त अपने अधिकार के साथ मैं यह घोषित करता हूँ कि मिलमालिक कारीगरों को विवाद-सम्बन्धी शेष समय के पगार में ३५ फ़ीसदी इज़ाफ़ा दें, अर्थात् २७॥ टका देने के बाद बची हुई रक़म वे कारीगरों को दें ।

अन्त में मुझे यह लिखते हुए संतोष होता है कि दोनों पक्षों ने परस्पर सहिष्णुता और शान्ति के साथ काम किया है, और पंच का निर्णय प्राप्त होने में जो विलम्ब हुआ, उस बीच दोनों ने परस्पर हिलमिलकर मिलों का काम चालू रक्खा है । मुझे आशा है कि दोनों पक्ष मिलकर काम करते रहेंगे ।

ता. १०-८-१९१८ **आनंदशंकर बापुभाई ध्रुव**

४

उपवास के सम्बन्ध में गांधीजी का वक्तव्य

मैं समझता हूँ कि मुझे अपने पिछले उपवास के सम्बन्ध में जनता के सामने अपनी स्थिति स्पष्ट करनी चाहिए। कुछ मित्र मेरे इस कार्य को मूर्खतापूर्ण समझते हैं, कुछ इसमें नामर्दी देखते हैं, और दूसरे कई इसे उससे भी खराब समझते हैं। लेकिन मैं यह मानता हूँ कि अगर मैंने यह क़दम बढ़ाया न होता तो मैं अपने सिरजनहार के प्रति और अपने अंगीकृत कार्य के प्रति बेवफ़ा रहा होता।

कोई एक महीना पहले मैं बंबई गया था। वहाँ मुझसे यह कहा गया था कि महामारी के कारण अहमदाबाद के मिल-मज़दूरों को जो बोनस दिया जाता था, अगर वह बन्द किया गया तो खयाल किया जाता है कि मज़दूर हड़ताल कर देंगे और उपद्रव मचायेंगे। मुझे मध्यस्थ बनने को कहा गया, और मैंने मंजूर किया।

पिछले अगस्त महीने से मज़दूरों को महामारी के कारण ७० फ़ीसदी तक बोनस मिलता था। इस बोनस को बन्द करने की कोशिश के कारण मज़दूरों में ज़ोरदार असन्तोष फैला। मिल-मालिकों ने बिलकुल अन्त-अन्त में महामारी के कारण दिये जानेवाले बोनस के बदले बढ़ी-चढ़ी महँगाई के निमित्त से उनकी मज़दूरी में २० फ़ीसदी इज़ाफ़ा कर देने की बात कही। परन्तु मज़दूरों को इससे सन्तोष न हुआ। सारा सवाल पंच के सिपुर्द किया गया, और अहमदाबाद के कलेक्टर मि० चेटफील्ड सरपंच नियुक्त किये गये। इस पर भी कुछ मिलों के मज़दूरों ने हड़ताल कर दी। मालिकों ने सोचा कि मज़दूरों ने यह सब बिना किसी उचित

कारण के किया है, इसलिए वे पंच प्रस्ताव से हट गये और उन्होंने 'लॉक आउट' का ऐलान कर दिया। उन्होंने यह भी तय कर लिया कि जिस बीस फ़ीसदी इज़ाफ़े का ऐलान उन्होंने किया है, जबतक मज़दूर उसको मंजूर करने के लिए थकथका कर विवश नहीं हो जाते, तबतक लॉक आउट ज़ारी रक्खा जाय। मज़दूरों की ओर से भाई शंकरलाल बैंकर, भाई वल्लभभाई पटेल और मैं पंच नियुक्त किये गये थे। हमने देखा कि अगर हम ताबड़तोड़ और मज़बूती के साथ कोई क़दम नहीं उठायेंगे, तो मज़दूर दबा दिये जायेंगे। इसलिए हमने इज़ाफ़े के सिलसिले में जाँच शुरू की। हमने मिलमालिकों की सहायता पाने की कोशिश की, किन्तु उन्होंने हमें कोई सहायता न दी। उनके मन में तो यही धुन समाई हुई थी कि मिलमालिकों का संयुक्त बल मज़दूरों के ऐक्य को किस प्रकार पराजित करे। अतएव एक दृष्टि से हमारी जाँचपड़ताल एकतर्फ़ा थी। फिर भी हमने मालिकों के पक्ष को ध्यान में रखने का यत्न किया, और हम इस निश्चय पर पहुँचे कि ३५ टके का इज़ाफ़ा उचित माना जा सकता है। मज़दूरों को अपना यह अंक बताने से पहले हमने अपनी जाँच का परिणाम मिलमालिकों की तरफ़ भेजा और उनसे यह भी कहा कि अगर वे उसमें कोई भूल सुझायेंगे, तो हम उसे सुधार लेने को तैयार हैं। लेकिन उन्होंने हमारे साथ किसी प्रकार का समझौता करना पसन्द ही न किया। उन्होंने अपने जवाब में यह बताया कि बंबई के सेठों और सरकार की तरफ़ से जो दर दी जाती है, वह हमारे द्वारा निश्चित दर से बहुत कम है। मैंने महसूस किया कि उनके जवाब का यह हिस्सा अनावश्यक था, अतएव एक विराट् सभा में मैंने ऐलान किया कि मिल-मज़दूर ३५ फ़ीसदी

इज़ाफ़ा मंजूर करेंगे । यहाँ यह ध्यान में रखने योग्य है कि मज़दूरों को महामारी के निमित्त उनकी मज़दूरी पर ७० फ़ीसदी इज़ाफ़ा मिलता था, और उन्होंने अपना यह इरादा जाहिर किया था कि बढ़ती हुई महँगी के कारण वे ५० टके से कम इज़ाफ़ा मंजूर नहीं करेंगे । परन्तु उनसे कहा गया कि वे अपनी ५० टका और मिलमालिकों की २० टका के बीच की दर को मंजूर करें । (बीच की दर स्वीकार करने का निर्णय बिलकुल आकस्मिक ही था ।) थोड़ी गुनगुनाहट के बाद सभा ने ३५ टके का इज़ाफ़ा लेना स्वीकार किया; इसके साथ यह भी मान ही लिया गया था कि जिस क्षण मिलमालिक पंच के मार्फ़त फ़ैसला कराना स्वीकार कर लें, उसी क्षण मज़दूर भी वैसा ही करें । इसके बाद प्रतिदिन हज़ारों आदमी गाँव के बाहर एक पेड़ की छाया तले इकट्ठा होते थे । उनमें से कई तो बड़ी दूर से पैदल चलकर आते थे, और सच्चे दिल से परमात्मा को साक्षी रखकर ३५ टके से एक पाई भी कम न लेने का अपना निश्चय मज़बूत करते थे । उन्हें पैसे की कोई मदद नहीं दी जाती थी । अब यह तो हर कोई समझ सकता है कि ऐसी हालत में उनमें से कइयों को भूख का कष्ट उठाना पड़ता था, और जबतक वे बेकार थे, उन्हें कोई क़र्ज़ भी न देता था । दूसरी तरफ़, उनके सहायकों की हैसियत से हमने यह निश्चय किया कि अगर उनमें से शक्तिशाली लोग मेहनत-मज़दूरी करके अपना गुज़ारा करने को तैयार न हों, और हम सार्वजनिक फण्ड इकट्ठा करके उसका उपयोग उनके भरण-पोषण में करें, तो उससे हम उनको नुकसान ही पहुँचायेंगे । जिन लोगों ने संचों पर काम किया था, उनको रेत या ईंट की टोकरियाँ ढोने को समझाना बहुत कठिन था । वे यह काम करते तो थे, लेकिन बड़ी नाराज़ी के साथ ।

मिलमालिकों ने भी अपने दिल कठोर बना लिये। उन्होंने भी २० टके से ज़्यादा न देने का निश्चय किया था, और मज़दूरों को फुसलाकर उनसे हाथ टिकवाने के लिए अपने जासूस छोड़ रक्खे थे। लॉक आउट के शुरू में ही हमने काम न करनेवालों की मदद न कर सकने का ऐलान कर दिया था, लेकिन इसके साथ हमने उन्हें यह विश्वास भी दिलाया था कि उन्हें खिलाकर और पहनाकर ही हम खायें और पहनेंगे। इस तरह २२ दिन बीत गये। भूख की पीड़ा का और मिलमालिकों के जासूसों का असर काम करने लगा। आसुरी भाव उनको बहकाने लगा और उनसे कहने लगा कि इस संसार में ईश्वर नाम की ऐसी कोई चीज़ नहीं है, जो उनकी मदद करे; और ये व्रत वग़ैरा तो कमज़ोरों की कमज़ोरी को छिपाने के लिए अख्तियार की गई तरकीबें हैं। मैं हमेशा देखता था कि लोग पाँच से लेकर दस हज़ार तक की संख्या में रोज़ उत्साह और उमंग के साथ इकट्ठा होते थे। उनके चेहरों से उनकी दृढ़ता टपकती थी। लेकिन इसके बदले एक दिन मैंने सिर्फ़ दो हज़ार आदमियों को एकत्र देखा; जिनके चेहरों पर निराशा छाई हुई थी। इसी अर्से में हमने यह भी सुना कि किसी एक चाल में रहनेवाले मिल-मज़दूरों ने सभा में आने से इनकार किया है, और वे बीस टके का इज़ाफ़ा मंजूर कर लेने की तैयारी में हैं। उन्होंने हमें सुनाकर यह भी कहा (और मैं समझता हूँ कि उनका कहना वाजिब था) कि हमारे पास मोटरें हैं, खाने-पीने का पूरा प्रबंध है, इसलिए सभा में हाज़िर रहने और मौत के मुक़ाबले में भी दृढ़ रहने की सलाह देना हमारे लिए आसान है। ऐसी दशा में मुझे क्या करना चाहिए? मुझे उनकी आपत्ति उचित मालूम हुई। ईश्वर में मुझे उतनी ही अचल श्रद्धा है

जितनी किसी प्रत्यक्ष वस्तु में होती है । और मैं मानता हूँ कि किसी भी दशा में वचन का पालन करना आवश्यक है । मैं जानता था कि हमारे सामने खड़े हुए लोग परमात्मा से डरते हैं; परन्तु लॉक आउट और हड़ताल के कई दिनों तक चलने के कारण उन पर असह्य बोझ आ पड़ा है । मैं हिन्दुस्तान में बहुत घूमा हूँ । अपनी इन यात्राओं में मैंने सैकड़ों आदमी ऐसे देखे हैं, जो पल में प्रतिज्ञा करते हैं, और पल में उसे तोड़ते हैं । मैं यह भी जानता था कि हम में जो लोग सबसे अच्छे माने जाते हैं, ईश्वर और आत्मबल के संबंध में उनकी श्रद्धा भी शिथिल और अस्पष्ट ही होती है । मैंने देखा कि मेरे लिए यह एक पवित्र अवसर है । मुझे अपनी श्रद्धा कसौटी पर चढ़ी हुई प्रतीत हुई, फलतः मैं बिना किसी संकोच के उठ खड़ा हुआ और मैंने कहा कि जो प्रतिज्ञा भावपूर्वक ली गई है, मिलमज़दूरों द्वारा उसका भंग होना मेरे लिए असह्य है । इसलिए मैंने प्रतिज्ञा की कि जबतक मज़दूरों को ३५ टका इज़ाफ़ा नहीं मिलेगा, अथवा जबतक वे हार कर हाथ नहीं टेक देंगे, तबतक मैं अन्नग्रहण न करूँगा । इस समय तक सभा में पिछली सभाओं का-सा उत्साह न था; उदासी थी । लेकिन अब उसमें जादू की तरह एकाएक उत्साह आ गया । एक-एक आदमी के गाल पर टप टप आँसू टपकने लगे, और वे एक के बाद एक उठकर यह ऐलान करने लगे कि जबतक उनकी माँग मंजूर नहीं होगी, वे कभी भी मिल में काम करने नहीं जायेंगे, और जो लोग इस सभा में हाज़िर नहीं हैं, उनसे मिलकर उन्हें भी मज़बूत बनायेंगे । सत्य और प्रेम के प्रभाव को प्रत्यक्ष निहारने का वह एक अमूल्य अवसर था । हर एक यह महसूस करने लगा कि परमेश्वर की पालक शक्ति

जितनी प्राचीन काल में हमारे आसपास रहती थी, उतनी ही आज भी है। इस प्रतिज्ञा का कोई पछतावा मुझे नहीं। बल्कि मैं तो श्रद्धापूर्वक यह मानता हूँ कि अगर मैंने कोई दूसरा तरीक़ा अख्तियार किया होता तो मैंने अपने अंगीकृत कार्य का द्रोह किया होता। प्रतिज्ञा करने से पहले भी मैं जानता था कि उसमें कुछ महान् त्रुटियाँ रह जाती हैं। मिलमालिकों के निश्चय पर किसी भी प्रकार का असर डालने के लिए इस प्रकार की प्रतिज्ञा करना तो उनके साथ घोर अन्याय करना है। मैं जानता था कि उनमें से कुछ की मित्रता का सौभाग्य मुझे प्राप्त है; लेकिन अपने इस काम से अब मैं अपने को इसके लायक़ रख नहीं रहा हूँ। मैं यह भी समझता था कि मेरे इस कार्य के कारण ग़लत-फ़हमी बढ़ने का डर है। मेरे लिए यह संभव न था कि मैं उनके निर्णय पर अपने उपवास के प्रभाव को पड़ने से रोकूँ। दूसरे, उनके परिचय के कारण मेरी ज़िम्मेदारी इतनी बढ़ गई थी कि मैं उसे उठाने में असमर्थ था। आमतौर पर इस तरह की लड़ाई में मज़दूरों के लिए जो राहत मैं उचित रूप से हासिल कर सकता था, उसीके लिए यहाँ मैं असमर्थ हो उठा। मैं जानता था कि मिलमालिकों से मैं कम में कम जो ले सकूँगा उससे, और मज़दूरों द्वारा की गई प्रतिज्ञा के तत्त्वों की सिद्धि के बदले उसके स्थूल अर्थ की सिद्धि से ही मुझे सन्तोष करना पड़ेगा; और हुआ भी वही। मैंने तराज़ू के एक पलड़े में अपनी प्रतिज्ञा के दोष रक्खे, और दूसरे में उसके गुण। मनुष्यप्राणी के बिलकुल निर्दोष कर्म तो बिरले ही हो सकते हैं। मैं जानता था कि मेरा काम तो खास तौर पर दोषयुक्त है। मैंने देखा कि हमारी आनेवाली संतान

हमारे बारे में यह कहे कि दस हज़ार आदमियों ने बीस-बीस दिन तक ईश्वर को साक्षी रखकर जो प्रतिज्ञा की थी, वह अचानक तोड़ डाली, उसकी अपेक्षा मिलमालिकों की स्वतंत्रता को और उनकी स्थिति को अनुचित रीति से विषम बनाने में मेरी जो बदनामी होगी, वह ज़्यादा अच्छी है। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि जबतक लोग फ़ौलाद की तरह मज़बूत नहीं बनते, और जबतक दुनिया उनकी टेक को 'मीड' और 'फारीसी' के क़ानून की तरह अटूट और अचल नहीं समझती, तबतक वे एक राष्ट्र बन नहीं सकते। मित्रों की राय चाहे जो बनी हो, तथापि इस समय तो मैं यही मानता हूँ कि आगे कभी ऐसा मौक़ा आया तो जैसा कि इस पत्र में कहा गया है, वैसा खेल खेलने में मैं पीछे नहीं हटूँगा।

इस पत्र को समाप्त करने से पहले मैं दो व्यक्तियों के नाम प्रकट करना चाहता हूँ। हिन्दुस्तान उन पर गर्व कर सकता है। श्री० अंबालाल साराभाई मिलमालिकों के प्रतिनिधि थे। वे एक सुयोग्य सज्जन हैं; बड़े सुशिक्षित और सजग व्यक्ति हैं। साथ ही वे दृढ़ निश्चयी भी हैं। उनकी बहन श्री अनसूयाबहन मिल-मज़दूरों की प्रतिनिधि थीं। उनका हृदय कुन्दन की तरह निर्मल है, और ग़रीबों के लिए उनके दिल में बहुत दया है। मिल-मज़दूर उन्हें पूजते हैं, और उनकी बात को क़ानून का-सा मान देते हैं। मैंने ऐसी कोई लड़ाई नहीं जानी, जिसमें कटुता नाम-मात्र को हो, और दोनों पक्षों के बीच इतना विनय रहा हो। इस मधुर परिणाम का श्रेय मुख्यतः उस संबंध को है, जो इस लड़ाई में श्री० अंबालाल साराभाई और श्री अनसूया बहन के कारण रहा।

गांधीजीनां गुजराती प्रकाशनो

आत्मकथा भा. १ २	१—०—०
आत्मकथा भा. १–२ (नागरी लिपि)	०–१४—०
खरी केळवणी	०–१२—०
केळवणीनो कोयडो	१—०—०
धर्ममंथन	०–१२—०
व्यापक धर्मभावना	०–१४—०
अहिंसा	०—८—०
वर्णव्यवस्था	०—६—०
अनासक्तियोग	०—२—०
गीतापदार्थकोष	०—४—०
मंगळप्रभात	०—१—०
आश्रमवासी प्रत्ये	०—२—०
दक्षिण आफ्रिकाना सत्याग्रहनो इतिहास भा. १–२	१–१२—०
येरवडाना अनुभव	०–१२—०
हिंद स्वराज (हस्ताक्षरमाँ, खादीनुं पूठुं)	१–१२—०
(छापेलुं)	०—४—०
गांधीजीनुं नवजीवन (चार भाग)	११—०—०
‘नीतिनाशने मार्गे’	०—४—०
त्यागमूर्ति अने बीजा लेखो	०–१२—०
सर्वोदय	०—१—६
एक सत्यवीरनी कथा अथवा सोक्रेटीसनो बचाव	०—१—०
गामडांनी वहारे	०—१—०
गीताबोध	०—१—६
गोसेवा	०—५—०

नवजीवन प्रकाशन मंदिर
अमदावाद